वर्ष—१ फरबरी—१९८२ अंक—२

भक्ति योग, ज्ञान योग, कर्म योग और राज योग, इनमें से किसी एक या अधिक या सबके द्वारा परमात्मा को उपलब्ध किया जा सकता है ।

यह अंक

श्रीरामकृष्ण ने मानव धर्म की स्थापना के लिए ही अवतार लिया था। किन्तु मानव धर्म है क्या ? धर्म के लक्षण श्रीरामकृष्ण देव के चरित में किस प्रकार पूर्णता से परिलक्षित होते हैं ? इन सारे प्रश्नों पर विचार करते हुए, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना के सचिव पूज्यवर श्रीमत स्वामी वेदान्तानन्दजी महाराज ने अपने निबंध 'मानव धर्म और श्रीरामकृष्ण' में कहा है कि श्रीरामकृष्ण ने कर्म, ज्ञान, भक्ति और योग इन सबकी सत्यता प्रमाणित कर साधारण मानव के लिए भक्ति को ही ग्रहण करने का उपदेश किया।

स्वामी विवेकानन्द विरचित कविता 'गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को' श्रद्धेय श्रीमत स्वामी व्योमरूपानन्द जी महराज के स्वत्वाधिकार में, रामकृष्ण आश्रम, धंतोली, नागपुर से प्रकाशित 'कवितावली' से हमने साभार लिया है।

कुछ प्रमाद पूर्ण व्यक्तियों द्वारा स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों और कार्यों की आलोचना करने का इधर दुष्ट-प्रयास किया जाने लगा है। रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के अध्यक्ष, । विश्वविख्यात एवं विख्यात वाग्मी पूज्यपाद श्रीमत स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने अपने निबंध 'स्वामी विवेकानन्द: एक क्रान्तिदूत' में स्वामीजी पर लगाये जाने वाले छद्म आरोपों का बिन्दु-बर-बिन्दु सर्वांगपूर्ण उत्तर देकर उन आरोपों को निरस्त कर दिया है।

पटना विश्वविद्यालय के दर्शनविज्ञान विभाग के भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष डॉ० विमलेश्वर डे पी० एच० डी० के निबंध 'युगधर्म प्रवर्तक : श्रीरामकृष्ण देव' में भगवान् श्रीरामकृष्ण द्वारा किये जाने वाले युग धर्म प्रवर्तन के स्वरूप पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है।

सक्रिय राजनीति का परित्याग कर आध्यात्मिक साधना में संलग्न, आत्मसंस्थ श्रद्धेय रामनन्दन जी (प० रामनन्दन मिश्र) ने अपने निबंध 'विश्व-धर्म: विश्व-नागरिक' में सम्पूर्ण विश्व के लिए एक धर्म, एक नागरिकता की प्रयोजनीयता पर सर्वांगपूर्ण चिन्तन प्रस्तुत किया है।

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

विवेक दीप

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द-विचारधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१ फरवरी, १९८२ अंक—२

उठो, जगो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक

देव आनन्द मधुकर

सम्पादकीय कार्यालय

रामकृष्ण निलयम्,

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

षड्वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५० रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु०

रचनाएं एवं सहयोग राशि सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

कुलटा स्त्री अपने कुटुम्ब में रहते हुए गृहस्थी के सभी काम करती रहती है, पर उसका मन सदा उपपति की ओर लगा रहता है। वह कामकाज करते समय भी सोचती रहती है कि कब उपपति के साथ भेंट होगी। इसी प्रकार तुम भी संसार के सब कामकाजों को करते हुए अपने मन को प्रतिक्षण भगवान की ओर ही रखो।

(२)

मन को ही सब कुछ जानो। ज्ञान अथवा अज्ञान—सब कुछ मन की अवस्था है। मनुष्य का मन ही उसे बद्ध और मुक्त, साधु और असाधु, पापी तथा पुण्यवान बनाता है। संसारी जीव यदि मन में सर्वदा भगवान् का स्मरण-मनन कर सकें तो उन्हें फिर और किसी साधना की आवश्यकता नहीं।

(३)

जैसे बच्चे पैसे के लिए माता से हठ करके मचल जाते हैं, कभी रोते हैं, कभी उसे मारते भी हैं, उसी प्रकार आनन्दमयी माता को अपने से अधिक अपना जानकर, उसको देखने के लिए जो व्यक्ति सरल बालक की भाँति व्याकुल होकर रोता है, उसको सच्चिदानन्दमयी माता दर्शन दिये बिना नहीं रह सकती।

आशीर्वचन

[परम पूज्य गुरुदेव श्रीमत स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज, उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन द्वारा प्रेषित]

रामकृष्ण योगोद्यान मठ,
७ योगोद्यान लेन,
कलकत्ता-७०००५४

प्रिय केदारनाथ

तुम्हारा १३. ११. '८१ का पत्र मिला और यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम हिन्दी भाषी क्षेत्र में रामकृष्ण-विवेकानन्द के संदेश के प्रसार-कार्य में स्वयं को सक्रियता पूर्वक लगाने को सोच रहे हो। मुझे निश्चित विश्वास है कि तुम्हारे नियमित वर्गों एवं व्याख्यानों की प्रचुर प्रशसा होगी और उस क्षेत्र के लोग उनसे लाभान्वित होंगे।

जहाँ तक हिन्दी में मासिक पत्रिका प्रकाशित करने का तुम्हारा विचार है, मैं तुम्हें सूचित करना चाहूँगा कि हिन्दी में एक त्रैमासिक पत्रिका 'विवेक ज्योति' हमारे मध्यप्रदेश के रायपुर केन्द्र से प्रकाशित हो रही है। अच्छा होगा कि तुम उस केन्द्र के प्रधान स्वामी आत्मानन्द, रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, मध्यप्रदेश से इस सम्बन्ध में पत्राचार करो। कई वर्ष पूर्व अद्वैत आश्रम, मायावती द्वारा एक हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ था किन्तु, दुर्भाग्यवश कुछ वर्षों के बाद वह बन्द हो गया। रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य के हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन के संबंध में अद्वैत आश्रम के प्रधान स्वामी अनन्यानन्द, मायावती, द्वारा लोहाघाट, जिला पिठोरागढ़, उत्तर-प्रदेश को, जिन्हें स्वामी विवेकानन्द के संपूर्ण साहित्य का सर्वाधिकार प्राप्त है, सूचित करना तुम्हारे लिए उत्तम होगा। उसका हिन्दी अनुवाद भी अद्वैत आश्रम द्वारा विवेकानन्द शताब्दी के अवसर पर १९६३-६४ में प्रकाशित हुआ था जिसका सर्वाधिकार भी उसी आश्रम को है। हमारे नागपुर केन्द्र ने भी इस प्रकार की अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। उनसे निम्न पते पर सम्पर्क स्थापित करना तुम्हारे लिए अच्छा होगा— स्वामी व्योमरूपानन्द, रामकृष्ण मठ, धंतोली, नागपुर-१२, महाराष्ट्र।

हिन्दी और अंग्रेजी के मूल साहित्य के प्रकाशन के अतिरिक्त भी जन-समूह में रामकृष्ण-विवेकानन्द के विचारों के प्रसार के लिए काफी कुछ किया जा सकता है। ऐसे हर व्यक्ति और संस्था के द्वारा किये जानेवाले प्रयासों के प्रति मेरी पूरी सहानुभूति और प्रोत्साहन के भाव हैं जो लोगों को इन जीवन-दायी विचारों और आदर्शों से परिचित कराने में सहायक होते हैं और उन लोगों के प्रति तो अत्यधिक है जो स्वयं ही इन विचारों और आदर्शों से रंजित हैं।

इधर मैं मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र की यात्रा में गया था और लौटती बार दिल्ली, कनखल (हरद्वार) और वाराणसी होता हुआ आया। मैं सकुशल हूँ। मैं श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के विचारों से उस क्षेत्र के लोगों को परिचित कराने के तुम्हारे प्रशंसनीय प्रयासों की पूर्ण सफलता की कामना करता हूं।

हार्दिक प्यार और शुभ कामनाओं के साथ,

सस्नेह तुम्हारा—
भूतेशानन्द
(स्वामी भूतेशानन्द)

किसी भी रीति से क्यों न हो यदि कोई अमृत के कुण्ड में एक बार गिर पड़े, तो अमर हो जाता है। यदि कोई स्तव-स्तुति करके गिरे, तो वह भी अमर हो जाता है और यदि किसी को किसी तरह अमृत कुण्ड में ढकेलकर गिरा दिया जाय, तो वह भी अमर हो जाता है। इसी प्रकार, जाने, अनजाने या भ्रम से अथवा और किसी प्रकार से भी भगवान का नाम क्यों न लिया जाय, उसका फल अवश्य होगा। —श्री रामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण-स्तोत्रम्

—स्वामी विवेकानन्द

ॐ ह्रीं ऋतं त्वमचलो, गुणजित् गुणेड्यः
नक्तन्दिवं सकरुणं तव पादपद्मम् ।
मोहंकषं बहुकृतं न भजे यतोऽहं
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥१॥

भक्तिर्भगश्च भजनं भवभेदकारि
गच्छन्त्यलं सुविपुलं गमनाय -तत्त्वम् ।
वक्त्रोद्धृतन्तु हृदि मे न च भाति किंचित्
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥२॥

तेजस्तरन्ति तरसा त्वयि तृप्ततृष्णाः
रागेकृते ऋतपथे त्वयि रामकृष्णे ।
मर्त्यामृतं तव पदं मरणोर्मिनाशं
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥३॥

कृत्यं करोति कलुषं कुहकान्तकारि
ष्णान्तं शिवं सुविमलं तव नाम नाथ ।
यस्मादहं त्वशरणो जगदेकगम्य
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥४॥

अर्थ—ॐ ह्रीं, तुम सत्य, अचल, त्रिगुणजयी और दिव्य गुणसमूहों के लिए स्तुति के योग्य हो, मैं तुम्हारे मोहविनाशक पूजनीय चरण कमलों का व्याकुल भाव से दिन-रात भजन नहीं करता। इसीलिए, हे दीनबन्धो, तुम ही मेरे आश्रय हो ॥१॥

संसारविनाशी भक्ति, वैराग्यादि और उपासना की सहायता से मनुष्य अति महान् ब्रह्मतत्त्व तक पहुँचने में समर्थ होता है, किन्तु इस तरह के वाक्य मेरे मुख से उच्चारित होते हुए भी हृदय में कुछ भी आभास नहीं होता। इसलिए, हे दीनबन्धो, तुम ही मेरे आश्रय हो ॥२॥

हे रामकृष्ण, सत्य के पथस्वरूप, तुम पर अनुराग होने से मनुष्य तुम को ही पाकर पूर्णकाम होता है, और शीघ्र रजोगुण से पार हो जाता है। मृत्यु रूपी तरंग के विनाशकारी तुम्हारे चरण मर्त्य लोक में अमृत-स्वरूप हैं। इसीलिए, हे दीनबन्धो तुम ही मेरे आश्रय हो ॥३॥

हे नाथ ! तुम्हारा मायासंहारी अति पवित्र 'ष्ण' अक्षर में अन्त होनेवाला (रामकृष्ण) नाम पाप को भी पुण्य में परिणत करता है। तुम इस जगत् के एकमात्र आश्रय हो। इसीलिए, हे दीनबन्धो, तुम ही मेरे आश्रय हो ॥४॥

सम्पादकीय सम्बोधन

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे

मेरे आत्मस्वरुप मित्रो,

विश्व एक विलक्षण विधान से संचालित है। हर रात की कालिमा से एक नये सूर्य का अवतरण होता है। अंधेरा फट जाता है और संसार उस सूर्य की जीवनदायिनी किरणों से अनुप्राणित हो अपनी तंद्रा और आलस्य को त्याग कर जीवन की भूमि पर कर्मठता से खड़ा हो जाता है।

पृथ्वी जब वैशाख के ताप से तप्त होती है, ग्रीष्म की प्राणहारिणी प्रचंड लू से जलने-झुलसने लगती है और उस गर्मी से जब सागर का जल खौलने लगता है तब आकाश में सावन के श्यामल-श्यामल बादल घिर आते हैं। पावस की रसभीनी फुहार से पृथ्वी के प्राण जुरा जाते हैं। नये अंकुर फुटते हैं। सर्वत्र हरीतिमा छा जाती है।

शिशिर की शीत से जब धरती का गात कांपने-ठिठुरने लगता है तब उसकी कोख से वसंत का जन्म होता है। एक नव जीवन, एक नव हर्ष-उल्लास से जड़-चेतन के प्राण स्पंदित हो उठते हैं।

इसी तरह जब धर्म की ग्लानि होती है, आचार की पावनता खंडित होने लगती है, सभ्यता के पाँव लड़खड़ाने लगते हैं, संस्कृति का मेरुदण्ड टूटने लगता है और आध्यात्मिकता की आँखें मुँदने लगती हैं तब परम चेतना के प्रशान्त महासागर में क्षोभ उत्पन्न होता है। वह परम चेतना मानव देह धारण कर अवतरित होती है— धर्म की स्थापना के लिए, साधुओं-सज्जनों के परित्राण के लिए, भद्रता और शिवता की प्रतिष्ठा के लिए, सभ्यता के संवर्द्धन और संस्कृति के संरक्षण के लिए।

अट्ठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल तक जब भारत अपने धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों के विस्मयकारी देश के पाँच हजार वर्षों की धार्मिक साधनाओं और सांस्कृतिक उपलब्धियों के पुष्प में कोई सौन्दर्य, कोई सम्मोहन और कोई सुगंध नहीं मिलने लगी तथा विदेशी सभ्यता, संस्कृति और ईसाई धर्म साधना में ही सारी शिवता और भद्रता के लक्षण दिखाई पड़ने लगे तब ऐसे ही धार्मिक निविड़ तिमिर की अवसादकारी वेला में भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने अवतार लेकर हिन्दू धर्म-साधना की उसकी समग्रता के साथ रक्षा की तथा विश्व को अन्य धर्मों के प्रति उदार एवं सहिष्णुता का भाव बरतने की सम्मोहक सीख दी।

अंग्रेजों के द्वारा राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त कर लेने के बाद भारत तेजी से विदेशी सभ्यता के प्रभाव में बहने लगा। राजनीतिक प्रभुता से पूरी तरह विच्छिन्न हो जाने के कारण अपनी प्राचीन संस्कृति की सबलता और शक्तिमत्ता से इसका विश्वास उठने लगा। अंग्रेजी स्कूलों और कालेजों में पढ़नेवाले कोमल मस्तिष्क के तरुण भारतीयों में एक ओर अपने देश के प्राचीन धर्म, सभ्यता और संस्कृति के प्रति शंका और अनास्था उत्पन्न होने लगी तथा दूसरी ओर यूरोपीय विचारों और आदर्शों के प्रति उनके मन में एक विचित्र आत्मघाती ललक और सम्मोहन के भाव जगने लगे।

इस स्थिति की भयावहता से जूझने के लिए राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशव चन्द्र सेन आदि ने 'ब्रह्म समाज', आर० जी० भण्डारकर और रानाडे ने 'प्रार्थना समाज', तथा स्वामी दयानन्द ने 'आर्य समाज' की स्थापना कर ईसाई मत के झंझावात से हिन्दू धर्म की दीपशिखा को बुझने से बचाने की दिशा में महत्तम प्रयास किये। किन्तु, ये 'समाज' हिन्दू धर्म को बचाने के उत्साह में उसके विभिन्न रूपों को

तो आर्य समाजी मूर्ति-पूजा, व्रत-अनुष्ठान, अवतारवाद, देवी-देवता, स्वर्ग-नरक इन सबका विरोध करते थे। वेद के अतिरिक्त वे किसी हिन्दू आर्ष ग्रन्थ को स्वीकार नहीं करते थे। गीता, भागवत, रामायण, महाभारत किसी को वे प्रमाण नहीं मानते। भला इन सबके बिना हिन्दू धर्म का सौन्दर्य बचता ही कितना ? राममोहन राय और दयानन्द ने यह तो प्रमाणित अवश्य किया कि हिन्दू धर्म न निन्दनीय है न ईसाइयत से तत्वतः हीन किन्तु, हिन्दू धर्म के समग्रगत सौन्दर्य की सुधन लिये. हिनी छटा लेकर श्रीरामकृष्ण ही अवतरित हुए।

श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव से मानो परमात्मा के विशाल उद्यान में एक सर्वथा विलक्षण और अनूठा फूल खिला और हिन्दू धर्म के आकाश में एक नये सूर्य का उदय हुआ। सन् १८३६ ई० की फाल्गुन शुक्ल द्वितीया को श्रीरामकृष्ण का जन्म लेना, इसीलिए, न आकस्मिक था न एक संयोग मात्र। हिन्दू धर्म-जगत में ईसाई धर्म का जो कुहरा छा गया था उसे फाड़ कर वासंती बयार बनकर श्रीरामकृष्ण आये थे। हिन्दू संस्कृति पर छाये हुए पाश्चात्य संस्कृति की अमावस्या के अन्धकार में द्वितीया का चन्द्र बनकर नवीन संस्कृति का एक नया, शीतल और सतत वर्द्धमान प्रकाशपुंज उड़ेलने को श्री रामकृष्ण का अवतरण हुआ। श्री रामकृष्ण के आविर्भाव से हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति निर्वात-निष्कम्प दीपशिखा की भाँति एक बार पुनः अपने मूल रूप में प्रतिष्ठित हो गयी।

श्रीरामकृष्ण ने स्वयं नानाविध साधनाओं के द्वारा हिन्दू धर्म में अन्तर्हित सत्यों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया और स्वयं धर्म के जीवन्त स्वरूप हो गये। उन्होंने वैष्णव, शैव, शाक्त, योग, तन्त्र, अद्वैत आदि सभी मार्गों की साधनाएँ कीं। इतना ही नहीं, इस्लाम और ईसाई मतों में भी दीक्षित होकर उन्होंने उन मतों के सत्य का दर्शन किया और तब उन्होंने यह सन्देश दिया कि विभिन्न धर्मों के बाह्य रूपों में चाहे जो भिन्नताएँ हों किन्तु उन सबके मूल में तात्विक सच्चाई है और विभिन्न धर्मों की निन्दा करने की अपेक्षा मनुष्य को किसी एक धर्म का सहारा तथा पूरी निष्ठा से पालन कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेना चाहिए, क्योंकि धर्म शास्त्रार्थ का नहीं, अनुभूति—सीधी और सच्ची अनुभूति—का विषय है। इसीलिए वे कहते थे—"शास्त्रार्थ को मैं नापसंद करता हूँ। ईश्वर शास्त्रार्थ की शक्ति से परे है। मुझे तो प्रत्यक्ष दीखता है कि जो कुछ है, वह ईश्वरमय है। फिर तर्कों से क्या लाभ? बगीचे में तुम आम खाने जाते हो न कि पेड़ों के पत्ते गिनने।"

श्रीरामकृष्ण को यह देखकर कि आधुनिक बुद्धिजीवी ईश्वर या धर्म का अहंकारवश मखौल उड़ाया करते हैं, मार्मिक पीड़ा हुआ करती थी। किन्तु उनमें से जो वस्तुतः आध्यात्मिक या धार्मिक जीवन जीना चाहते थे, उनकी सेवा और सहायता से उन्हें अपार हर्ष होता था। माइकेल मधुसूदन दत्त, बंकिमचन्द्र चटर्जी, पंडित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर आदि ऐसे लोग थे जिनसे श्रीरामकृष्ण मिलकर धर्म चर्चाएँ किया करते थे। केशवचन्द्र सेन, प्रताप चन्द्र मजुमदार, विजयकृष्ण गोस्वामी, पंडित शिवनाथ शास्त्री और त्रैलोक्यनाथ सान्याल उनके चरणों में घण्टों मन्त्रमुग्ध भाव से बैठकर उनके सन्देश सुना करते थे। इन बौद्धिक विद्वानों पर परमहंस के प्रभाव के संबंध में प्रताप चन्द्र मजुमदार ने स्वयं कहा है—'उनके और मेरे बीच समानता क्या है ? मैं यूरोपीयकृत सुसभ्य, अर्धनास्तिक और तथाकथित सुशिक्षित तार्किक व्यक्ति हूँ जिसकी सारी चिन्ता अपने ही निमित्त है, और वे निर्धन, अशिक्षित, व्यवहार में भद्दे, मूर्तिपूजक एवं निस्सहाय हिन्दूभक्त हैं। भला मैं उनकी सेवा में घंटों क्यों बैठा करूँ-मैं, जिसने डिजरेली और फाकेट के विचार सुने हैं, जिसने स्टानले और मैक्समूलर की विद्याएं प्राप्त की हैं, जिसने युरोप के बीसियों विद्वानों और धर्मपुरुषों के विचारों का पान किया है ? किन्तु केवल मैं ही नहीं, यहाँ तो मेरे जैसे दर्जनों लोग हैं जो यही करते हैं "... वे (रामकृष्ण) राम की पूजा करते हैं, शिव की पूजा करते हैं, काली को पूजते हैं और साथ ही वेदान्त में भी उनका अडिग विश्वास है। वे प्रतिमा पूजक हैं, किन्

निरंजन और निराकार की पूर्णता का ज्ञान कराने में भी उनसे बढ़कर कोई और माध्यम नहीं हो सकता। उनका धर्म आनन्द है, उनकी पूजा समाधि है। अहर्निश उनका समस्त अस्तित्व एक विचित्र विश्वास और साधना की ज्वाला से प्रदीप्त रहता है।"

कालकत्ते के दक्षिणेश्वर में रानी रासमणि ने जो मन्दिर बनवाये थे उनमें उन्होंने अचल और सचल दोनों प्रतिमाएँ स्थापित की थीं। कुछ मन्दिरों में जगदम्बा काली, राधाकान्त, भगवान शिव आदि की अचल प्रतिमाएँ स्थित थीं और उसी प्रांगण में एक और देवालय था जिसमें श्री रामकृष्ण नामक सचल देवता प्रतिष्ठित थे। वहीं से उन्होंने अपनी चेतना की ऊर्जा से विश्व के मन-प्राणों को स्पंदित किया था।

श्रीरामकृष्ण न सभाओं में व्याख्यान देते थे न अखबारों में बयान। उन्होंने तो एक ओर कुछ गृहस्थों और कुछ नवशिक्षित तरुणों को अपने विचारों से अनुप्राणित किया और दूसरी ओर जो भी उनकी शरण में गया अभेद भाव से सबको अपने स्नेह के रस से सिंचित किया।

ईसा मसीह ने किसी नारी को अपनी शिष्या नहीं बनाया। शायद यहूदी संस्कार के कारण वे अपने ही विचारों को कार्य में परिणत नहीं कर सके। किन्तु श्रीरामकृष्ण ने एक ओर अपने को कंचन और कामिनी से मुक्त रखा तो दूसरी ओर ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक सबको बिना किसी जाति भेद के और नर-नारी को बिना किसी लिंग भेद के अपनी शरण में लेकर अपना शिष्यत्व प्रदान किया। श्रीरामकृष्ण के शिष्यों में जो प्रौढ़ गृहस्थ थे वे आजीवन गृहस्थ रहकर भी उनकी आध्यात्मिकता की शीतल विभा से आलोक ग्रहण कर भास्वर हो उठे। उनमें महेन्द्र नाथ गुप्त, गिरीश चन्द्र घोष, बलराम बोस, दुर्गाचरण नाग, सुरेन्द्रनाथ मित्र तथा अन्य कई पुरुष-महिलाएँ प्रमुख हैं। जिन युवकों ने उनकी शिष्यता ग्रहण कर कालांतर में संन्यास ले लिया उनमें एक बिहारी (छपरा के) युवक लाटू (स्वामी अद्भुतानन्दजी) के अतिरिक्त गोपाल (स्वामी अद्वैतानन्द), गंगाधर स्वामी अखंडानन्द), काली (स्वामी अभेदानन्द), शरत (स्वामी सारदानन्द), बाबूराम (स्वामी प्रेमानन्द), राखाल (स्वामी ब्रह्मानन्द) और नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) आदि प्रमुख थे जिन्होंने अपने प्रोज्ज्वल व्यक्तित्व, प्रखर चेतना, अनंत ऊर्जा और अखंड अनुभूति-जन्य ज्ञान के प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व को आन्दोलित एवं चमत्कृत कर दिया।

श्रीरामकृष्ण ने संन्यास की परम्परा में भी एक नयी कड़ी जोड़ दी—नयी जीवन-पद्धति की। उन्होंने विवाह भी किया, अपनी लीला सहधर्मिणी को अपने साहचर्य में भी रखा और इतना होने पर भी उनके साथ कभी भी दैहिक संबंध नहीं रखा। विश्व के आध्यात्मिक पुरुषों में कदाचित् श्री रामकृष्ण पहले महापुरुष थे जिन्होंने ऐसा आदर्श जगत् के सम्मुख प्रस्तुत किया था। बुद्ध ने पत्नी को छोड़कर संन्यास लिया। शंकराचार्य ने विवाह ही नहीं किया था। ईसा मसीह का भी यही हाल था और मुहम्मद साहब ने पत्नी को रखकर कई संतानें उत्पन्न की थीं। किन्तु, रामकृष्ण एक ऐसे संन्यासी थें जिन्होंने पत्नी का कभी परित्याग नहीं किया बलिक बड़े अनुराग से सदैव उसकी देख-रेख की। तथापि कभी उन्हें सांसारिक दृष्टि से नहीं देखा। संन्यास और गार्हस्थ्य का ऐसा मणि-कांचन संयोग विश्व में विरल है।

श्रीरामकृष्ण के उपदेशों का अमृत पान कर ही हम अपने जीवन को कृतकृत्य कर सकते हैं। उन्होंने प्रत्येक जीव की शिव भाव से सेवा करने का संदेश दिया। उन्होंने गृहस्थों को भक्ति का अवलम्बन लेकर शुद्ध जीवन जीने का मंत्र दिया। उन्होंने संन्यासियों को कठोर वैराग्य, कामिनी-कांचन का त्याग और अपनी मुक्ति तथा जगत के हित के लिए साधना करने का उपदेश दिया। उन्होंने प्रत्येक नारी में भगवती और प्रत्येक नर में शिव का दर्शन करने की नयी उपनिषद् दी और उन्होंने अपने धर्म में आस्था तथा अन्य धर्मों के प्रति समादर का भाव रखने की प्रेरणा जगायी। वस्तुतः भारत में जब कभी साम्प्रदायिक एकता होगी तो वह श्रीरामकृष्ण के बताये मार्गों पर चलकर ही हो

सकेगी। रामकृष्ण के संदेश किसी पंडित के प्रवचन नहीं थे, किसी धार्मिक नेता या समाज सुधारक के शब्द नहीं थे बल्कि वे तो स्वयं धर्म के मुख से निकले हुए लोक मंगल के श्लोक थे। इसीसे प्रताप चन्द्र मजुमदार ने लिखा है कि "श्रीरामकृष्ण के दर्शन होने के पूर्व, धर्म किसे कहते हैं, यह कोई समझता भी नहीं था। सब आडम्बर ही था। धार्मिक जीवन कैसा होता है, यह बात रामकृष्ण की संगति का लाभ होने पर जान पड़ी।"

श्रीरामकृष्ण देव ने अपने दैवी व्यक्तित्व, अपने परम चैतन्य रूप और अपने नित्य करुणामय जीवन से जिस आध्यात्मिक ऊर्जा की तरंग विश्व मानस में फेंकी उसकी चरम परिणति अभी नहीं हुई है। भगवान् बुद्ध की मृत्यु के समय थोड़े से लोग ही उनके पास थे। कालान्तर में उनका धर्म विश्वव्यापी हो गया। महात्मा ईसा जब शूली पर लटकाये जा रहे थे तब किसी ने उन्हें छोड़ देने की माँग तक नहीं की। और तो और, उनके अपने एक शिष्य ने ही उन्हें पहचानने तक से इनकार कर दिया। किन्तु, उन्होंने जो ऊर्जा उत्क्षिप्त की थी उसने दो हजार वर्षों में आधे विश्व को अपने रंग में रंजित कर लिया। भगवान् रामकृष्ण की ऊर्जा का प्रभाव आनेवाली शताब्दियों में देखा जा सकेगा। मुझे लगता है कि विश्व में कभी जब किसी एक महापुरुष के संदेश की छाया में आकर सभी मानव प्राणी शाश्वत रूप से विश्राम लेने की बात सोचेंगे तब वह संदेश श्रीरामकृष्ण का ही होगा। रोमाँ रोलाँ ने लिखा है 'बिना दीक्षित हुए ही हम सारे ईसाई श्रीरामकृष्ण के शिष्य हैं।' मुझे लगता है, कालान्तर में जो विश्वधर्म होगा वह श्रीरामकृष्ण— विवेकानन्द के द्वारा उपदेशित और प्रचारित धर्म ही होगा, चाहे उसका नाम कुछ भी क्यों न हो। आइए, हम, आप अभी से उनके संदेशों के महा वटवृक्ष की छाया में आश्रित होकर अपने सर्वविध मंगल के लिए आश्वस्त हो जाएं।

भगवान् श्रीरामकृष्ण हम सबका मंगल करें।

मानव धर्म और श्रीरामकृष्ण

स्वामी वेदान्तानन्द

स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्म स्वरूपिणे ।
अवतार वरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ॥

स्वामी विवेकानन्द ने स्वरचित इस प्रणाम-मंत्र में भगवान् श्रीरामकृष्ण को तीन विशेषणों से विभूषित किया है—वे धर्म-संस्थापक हैं, सर्व धर्म स्वरूप हैं एवं अवतार वरिष्ठ हैं।

भगवान् की अवतारलीला एवं धर्म संस्थापन के विषय में विवेचन करने के क्रम में पहले यह प्रश्न उठता है कि धर्म किसे कहते हैं ? धर्म नित्य वस्तु है, अथवा क्या वह नवीन भावों से सदैव सृजित होता है ? धर्म को नित्य कहकर स्वीकार करने पर प्रश्न यह उठता है कि उसका स्वरूप क्या है ? वह किस रूप में स्थापित होता है ? युगावतारगण किस रूप में उसे युग के लिए उपयोगी बनाकर संस्थापित करते हैं ? धर्म समूह विभिन्न हैं और सम्पूर्णतः उनकी सृष्टि नये भावों से करने में क्या दोष है ?

इन सारी शंकाओं के समाधान के प्रसंग में प्राचीन भारतीय शास्त्र रचयिताओं ने धर्म के जो सारे लक्षण दिये हैं, उन सबका विवेचन करना होगा। भारतवासी भारत में उद्भूत एवं प्रचारित धर्म को सनातन कहकर उस पर विश्वास करते हैं। सनातन शब्द का अर्थ है— जो चिरकाल तक वर्तमान रहता है, जो सभी देशों, सभी कालों एवं सभी मनुष्यों के लिए ग्रहण के योग्य हो। महर्षि मनु के मत से इस मानव धर्म के लक्षण इस प्रकार हैं :—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥
(६/९२ मनु संहिता)

धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी नहीं करना, देह को

का अभ्युदय होने लगा था उसी धर्म-ग्लानिको दूरकर सनातन धर्मके युगोपयोगी आदर्शके प्रचारके लिए श्रीरामकृष्ण का शरीरधारण कर भगवान्‌का आविर्भाव हुआ था।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—"रामकृष्ण ज्ञान, भक्ति और प्रेम के अवतार थे। अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम, अनन्त कर्म, अनन्त जीव-दया" स्वामीजी ने फिर कहा है—"रामकृष्ण के अवतार से ज्ञान रूपी तलवार द्वारा नास्तिकता रूपी मलेच्छ का अंत होगा और भक्ति एवं प्रेम के द्वारा समस्त जगत् एकीभूत होगा।"

भगवान् जब मानव देह धारण कर अवतरित होते हैं, तब वे 'अपने आचारों द्वारा जीवों को धर्म सिखाते हैं। नारद द्वारा कथित तीस लक्षणों से युक्त सनातन मानव धर्म का श्रीरामकृष्णदेव ने अपने जीवन में किस प्रकार आचरण किया था और किस प्रकार उसका प्रचार संसार में किया था उस विषय का विवेचन मैं कभी बाद में करूँगा। इन तीस लक्षणों में प्रथम कथित इक्कीस लक्षण सनातन मानव धर्म की भित्ति हैं। इन सभी नीतियों का सम्यक् आचरण अतीत के किसी धार्मिक मनुष्य द्वारा नहीं किया गया। और शेष नौ भक्ति योग के अवलम्बन से ईश्वर की प्राप्ति की विभिन्न साधनाएँ हैं। इन सभी साधनाओं में से किसी एक का अवलम्बन कर साधक ईश्वर की प्राप्ति में समर्थ हो सकता है। सर्वधर्म स्वरूप युगावतार श्रीरामकृष्ण ने कर्म, ज्ञान, भक्ति और योग—इन सभी साधना पथों की सत्यता प्रमाणित एवं उन्हें पुनः नये भावों से प्रचारित किया तथा साधारण मानव के लिए सुगमता के कारण भक्ति पथ ही अवलम्बन के योग्य हैं, यह बात उन्होंने बार-बार कही। नारद द्वारा कथित धर्म श्रीरामकृष्ण के जीवन में पूर्णरूप में प्रकटित एवं उनके द्वारा प्रचारित हुआ था।

गाता हूं गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को

स्वामी विवेकानन्द

[परमहंस श्रीरामकृष्ण देव के शरीर-त्याग के बाद संन्यासी के रूप में भारत-भ्रमण करते हुए एक बार स्वामी विवेकानन्द गाजीपुर के पौहारी बाबा से मिलने गये। स्वामीजी ने पौहारी बाबा से प्रभावित होकर दीक्षा लेनी चाही। किंतु जब-जब स्वामी जी बाबा से दीक्षा लेना चाहते थे तब-तब परमहंस रामकृष्ण देव स्वामीजी के समक्ष मौन भाव से खडे हो जाते थे और स्वामी जी हतप्रभ हो जाते थे। उन्होंने कई बार चाहा कि पौहारी बाबा से दीक्षा ले ही लें किन्तु, हर बार परमहंस की आकृति उनके सामने खड़ी हो जाती थी। परमहंस उनकी ओर मात्र अपलक नेत्रों से देखते रहते थे। अंत में स्वामी जी ने पौहारी बाबा का शिष्य होने का भाव छोड़ दिया। उन दिनों परमहंस के भाव-दर्शन से स्वामी जी की जो मनः स्थिति होती थी उसी को लक्ष्य कर स्वामीजी ने यह कविता कुछ दिनों के बाद मूल बंगला में 'गाइ गीत सुनाते तोमाय' शीर्षक से बनायी थी। महाकवि निराला ने इस कविता का हिन्दी रूपान्तर किया था।—संपादक)

गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को;
भले और बुरे की—
लोकनिन्दा, यशकथा की
नहीं परवाह मुझे,
दास हूँ तुम दोनों का,
सशक्तिक चरणों में प्रणाम है तुम्हारे देव।
पीछे खड़े रहते हो,
इसीलिए हँसते हुए मुख को
मैं देखता हूँ बार-बार मुड़-मुड़कर,
बार-बार गाता मैं—खौफ नहीं खाता कभी,
जन्म और मृत्यु मेरे पैरों पर लोटते हैं।
दया के सागर तुम,
दास हूँ तुम्हारा जन्म-जन्म का मैं,
गति मैं तुम्हारी नहीं जानता हूँ—

अपनी गति ?—वह भी नहीं,
कौन चाहता भी है जानने को ?
भुक्ति-मुक्ति भक्ति आदि जितने हैं
जप-तप-साधन-भजन सब
आज्ञा से तुम्हारी ही दूर मैंने कर दिये हैं,
एकमात्र आशा पहचान की है लगी हुई,
इससे भी करो पार
नेत्र देखते हैं यह सारा ब्रह्माण्ड,
नहीं देखते वे अपने को,
देखें भी क्यों कहो ?
देखते अपना ही मुख
दूसरों का देख रूप।
मेरे तुम नेत्र हो,
रूप तुम्हारा ही सब घटों में विराजमान।
बालकेलि करता हूँ तुमसे मैं
और क्रोध करके देव
तुमसे किनारा कर जाना कभी चाहता हूँ,
किन्तु निशाकाल में
शय्या के शिरोभाग में,
देखता हूँ तुमको मैं खड़े हुए,—
चुपचाप,—आँखें छलछलायी हुईं,
हेरते हो मेरे तुम मुख की ओर।
उसी समय बदल जाता भाव मेरा
पैरों पड़ता हूँ,
पर क्षमा नहीं माँगता
तुम नहीं करते हो रोष।
पुत्र हूँ तुम्हारा, कहो,
और कोई कैसे इस प्रगल्भता को
सहन कर सकता है ?
प्रभु हो तुम मेरे,
तुम प्राण सखा मेरे हो।
कभी देखता हूँ—
"तुम मैं हो, मैं तुम हूँ,
तुम वाणी, हो वीणापाणि मेरे तुम कण्ठ में—
तुम्हारी ही तरंगों से बह जाते नारीनर।"
सिन्धुनाद जैसा तुम्हारा हुंकार है,
सूर्य और चन्द्र में हैं वचन तुम्हारे देव,
मृदुमन्द पवन तुम्हारा आलाप है,
ये सब हैं सच बातें,
किन्तु फिर भी स्थूल भाव ही है यह,
तत्त्ववेत्ताओं का प्रसंग यह है नहीं।
सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह मण्डल सब,
कोटि-कोटि मण्डली-निवास,
धूमकेतु, बिजली की चमक और
विस्तृत अनन्त यह आकाश देखता है मन।
काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि,
इस तरंग-लीला का उत्थान जहाँ होता है
विद्या-अविद्या का स्थान,
जन्म-जरा-जीवन-मरण जैसे
सुख-दुख द्वन्द्वों से भरा,
केन्द्र जिसका अहं है,
दोनों भुज—बहिः और अभ्यन्तर,
आसमुद्र आसूर्य-चन्द्रमा,
आतारक अनन्त आकाश,
मन बुद्धि-चित्त-अहंकार,
देव-यक्ष-मानव-दानव-गण,
पशु-पक्षी कृमि-कीट आदि,
अणुक-द्व्यणुक-जड़ जीव,
उसी समक्षेत्र में हैं विद्यमान।
अति स्थूल हो तो किन्तु यह बाह्य विकास है
केश जैसे मस्तक पर।
मेरुतट पर हिमाच्छादित पर्वत
है योजनों का उसका विस्तार;
निरभ्र नभ में उठे अभ्रभेदी बहु शृंग;
दृष्टि झुलसाती हैं हिमशिलाएँ,
बिजली के प्रकाश से सौगुना बढ़ा है तब।
उत्तर अयन में
एकीभूत किरणों की हजारों ज्योतिरेखाएं
कोटि-वज्र-सम-खर कर-धारा जब डालती हैं,
हर एक शृंग पर
मूर्च्छित हुए-से भुवनभास्कर नजर आते हैं,
गलता हिमशृंग जब टपकता है गुहा में,
घोर नाद करता हुआ
टूट जब पड़ता गिरि,

स्वप्नसम जलबिम्ब जल में मिल जाता है।
मन की सब वृत्तियाँ जब एक ही हो जाती हैं,
कोटि सूर्य से भी बढ़ा
फैलता है चित्प्रकाश,
गल जाते सूर्य-चन्द्र-तारा-दल—
खमण्डल-तलातल-पाताल भी,
ब्रह्माण्ड-गोष्पद समान जान पड़ता तब।
ब्राह्मभूमि के बाहर जाता जब, शान्तधातु होता,
मन निश्चल होता है स्थिर,
तंत्रियाँ हृदय की सब ढीली पड़ जाती हैं,
खुल जाते बन्धन समूह और दूर होते माया-मोह,
गूँजता अनाहत नाद सुन्दर तुम्हारा वहाँ
भक्तिपूर्वक सुनता यह दास
है तत्पर सदा ही
पूर्ण करने को तुम्हारा काम।
"मैं ही विद्यमान हूँ,
प्रलय के समय में
अनन्तब्रह्माण्ड ग्रास करके जब
ज्ञान ज्ञेय-ज्ञाता मिट जाते हैं,
नामोनिशान नहीं रहते संसार के—
पार करता तर्क की भी सीमा को
नहीं रहते हैं जब सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह—
वह महा निर्वाण है—
नहीं रह जाता कर्म, करण या कारण कुछ,
घोर अन्धकार होता अन्धकार-हृदय में,
(तब) मैं ही विद्यमान हूँ।
"मैं ही विद्यमान हूँ, प्रलय के समय में
अनन्त ब्रह्माण्ड ग्रास कर के जब
ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता मिट जाते हैं,
नामोनिशान नहीं रहते संसार के—
पार करता तर्क की भी सीमा को,
नहीं रहते हैं जब सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह
घोर अन्धकार होता अन्धकार हृदय में,
दूर होते जगत् के तीनों गुण—
अथवा वे मिल करके शान्त भाव धरते जब,
एकाकार होते सूक्ष्म शुद्ध परमाणु काय
(तब) मैं ही विद्यमान हूँ।

मैं विकसित फिर होता हूँ।
मेरी ही शक्ति धरती पहले विकार-रूप।
आदि वाणी प्रणव-ओंकार ही बजता महाशून्य-पथ में,
अनन्त आकाश है सुनता महानाद-ध्वनि,
कारण मण्डली की निद्रा छूट जाती हैं,
अनन्त-अनन्त परमाणुओं में प्राण भी आ जाते हैं,
'नर्तन-आवर्त औ' उच्छ्वास
बड़ी दूर से चलते केन्द्र ही की ओर,
चेतन पवन है उठाती ऊर्मिमालाएँ
महाभूत-सिन्धु पर,
परमाणुओं के आवर्त धन विकास और
रंग-भंग-पतन-उच्छ्वास-संग
बहती बड़े वेग से हैं वे तरंगराजियाँ
जिनसे अनन्त—हाँ अनन्त खण्ड उठे हुए
घात-प्रतिघातों से शून्यपथ में दौड़ते हैं—
खमण्डल बन-बनकर, तारा-ग्रह घूमते हैं,
घूमती यह पृथ्वी भी—मनुष्यों कीवास-भूमि।
आदि कवि मैं ही हूँ,
मेरी ही शक्ति के रचना कौशल में हैं
जड़ और जीव सारे
मैं ही खेलता हूँ शक्तिरूपिणी निज माया से।
एक, होता हूँ अनेक
मैं देखने के लिए सब अपने स्वरूपों को।
"आदि कवि मैं ही हूँ,
मेरी ही शक्ति के रचनाकौशल में हैं
जड़ और जीव सारे।
मेरी ही आज्ञा से
बहती इस वेग से है झंझा इस पृथिवी पर,
गरज उठता है मेघ—
अशनि में नाद होता,
मृदुमन्द वायु भी आती और जाती है
मेरे ही श्वास के ग्रहण और त्याग में;
हिमकर सुख-हिमकर की धारा जब बहती है,
तरु औ' लताएँ हैं ढकती धरा की देह,
शिशिर से धुले हुए मुख को उठा करके
ताकते रह जाते हैं
भास्कर को सुमनवृन्द!"

स्वामी विवेकानन्द : एक क्रान्तिदूत

स्वामी आत्मानन्द

आजकल स्वामी विवेकानन्द के कार्यों का गलत रूप से मूल्यांकन करने की एक परम्परा ही चल पड़ी है। किसी को स्वामीजी पलायनवादी दीखते हैं, तो किसी को अँगरेजों के हिमायती। कोई उन्हें पुराणपन्थी मानता है, तो कोई जातिवाद का कट्टर समर्थक। कुछ समय पहले प्रभा दीक्षित के नाम से स्वामीजी के सम्बन्ध में एक लेख 'दिनमान' में छपा था, तो ज्योतिर्मय के नाम से एक दूसरा लेख 'सरिता' में। ये सभी लेखक पूर्वग्रह से पीड़ित प्रतीत होते हैं, क्योंकि उन्होंने स्वामीजी के पूरे सन्दर्भ पर वचनों को उद्धृत न कर, उनका मात्र अंश ही उद्धृत किया है, जिससे वे अपने विचारों का समर्थन स्वामीजी के उक्त वाक्यांशों के माध्यम से करा सकें। इस लेख का उद्देश्य स्वामीजी के व्यक्तित्व को प्रामाणिक आधारों पर परिस्फुट कर उपर्युक्त श्रेणी के लेखकों के कुत्सित छल का पर्दाफाश करना है।

ऐसे लेखक स्वामी विवेकानन्द को निम्नलिखित तीन बातों के लिए दोषी मानते हैं :—

(१) यह कि विवेकानन्द पुराणपन्थी, सुधार-विरोधी एवं शूद्र-द्वेषी थे तथा जातिवाद, ऊँच-नीच एवं ब्राह्मणशाही का समर्थन करते थे। वे शूद्रों को ऊँची जाति के पैर चाटनेवाले कुत्तों की तरह मानते थे अथवा फिर बर्बर पशुओं की तरह अमानवीय।

(२) यह कि विवेकानन्द को भारतीय जनता की गरीबी से कोई सरोकार नहीं था, बल्कि यह गरीबी ही उनकी दृष्टि में भारत की जीवनीशक्ति थी। वे बुराइयों को स्वाभाविक मानकर समाज से हटाने के लिए चेष्टा-शील न हो, अपने खून से जोश को हटा लेने का उपदेश करते थे।

(३) यह कि विवेकानन्द अँगरेजों के पृष्ठपोषक और हिमायती थे और उन्हें भारतीय स्वातंत्र्य से कोई मतलब नहीं था। विवेकानन्द ने भारतीय जनता को स्वतंत्रता की प्रेरणा देने अथवा उसमें राष्ट्रीयता का भाव जगाने के स्थान पर उलटे उसे पलायनवाद की ओर उन्मुख किया और ब्रिटिश राज की प्रशंसा की।

विवेकानन्द के प्रति ये तीनों शिकायतें कितनी निराधार हैं, इसका प्रमाण हमें स्वामीजी के ग्रंथों में ही मिल जाता है। जहाँ तक पहली शिकायत का सवाल है, उसका निराकरण विवेकानन्द की 'जाति संस्कृति और समाजवाद' नामक पुस्तक में ही प्राप्त होता है। वे वहीं (पृष्ठ ८२ से ८७) उच्च वर्ण के लोगों को तिरस्कृत करते हुए कहते हैं—"भारतवर्ष के कृषक, चर्मकार, मेहतर तथा ऐसे ही अन्य निम्न जातिवालों में कार्य करने की शक्ति एवं आत्मविश्वास तुम्हारी अपेक्षा अधिक है। वे कई युगों से चुपचाप काम करते आये हैं और वे ही देश की सम्पूर्ण सम्पत्ति, बिना चूँ तक किये, कमाते आये हैं। बहुत शीघ्र ही वे तुमसे ऊँचे पद में पहुँच जाएँगे।...... यदि मजदूर लोग काम करना बन्द कर दें, तो तुम्हें अन्न-वस्त्र मिलना भी बन्द हो जाय। और तुम उनको नीच जाति के मनुष्य मानते हो और अपनी संस्कृति की शेखी मारते हो!" "भारतवर्ष के इन गरीब, निम्न जाति वालों के प्रति हमारे जो भाव हैं, उनका विचार करने से मेरे अन्तःकरण में कितनी पीड़ा होती है! उन्हें कोई अवसर नहीं मिलता, उनके लिए बचने का कोई रास्ता नहीं है और ऊपर चढ़ने का कोई मार्ग नहीं।......वे प्रतिदिन अधिकाधिक नीचे डूबते जा रहे हैं, निर्दय समाज के द्वारा अपने ऊपर होने वाले आघातों का वे अनुभव करते हैं, पर वे जानते नहीं कि ये आघात कहाँ से आ रहे हैं। वे भी दूसरों के समान मनुष्य हैं, इस बात को वे भूल गये हैं। और इसका परिणाम हुआ है गुलामी या दासत्व।"

अतः, 'वर्तमान समय में तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम एक गाँव से दूसरे गाँव को जाओ और लोगों को समझाओ कि अब और अधिक समय तक आलस्यपूर्वक केवल बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। उन्हें उनकी यथार्थ स्थिति का परिचय कराओ और कहो, 'ऐ भाइ

सब लोग उठो ! जागो ! अब और कितनी देर तक सोते रहोगे !.........अब तक ब्राह्मणों ने धर्म पर एकाधिपत्य कर रखा है; परन्तु जब वे काल की प्रबल तरंग के विरुद्ध अपना एकाधिपत्य नहीं रख सकते, तब चलो, और ऐसे प्रयत्न करो कि देशभर में प्रत्येक को वह धर्म प्राप्त हो जाय। उनके मन में यह बैठा दो कि ब्राह्मणों के समान उनका भी धर्म पर वही अधिकार है। सभी को, चाण्डाल तक को भी, इन्हीं जाज्वल्यमान मंत्रों का उपदेश करो। उन्हें सरल शब्दों में जीवन के लिए आवश्यक विषयों तथा वाणिज्य-व्यापार और कृषि आदि की भी शिक्षा दो। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते, तो धिक्कार है तुम्हारी शिक्षा और संस्कृति को, धिक्कार है तुम्हारे वेदों और वेदान्त के अध्ययन को ! ऐ भारत के उच्च जातिवालो, तुम चाहे जितना भी अपने को आर्य पूर्वजों की सन्तान कहने का प्रदर्शन करो, चाहे जितना भी प्राचीन भारत के वैभव का रात-दिन गुणगान करो और अपने जन्म के अभिमान में अकड़ते रहो—पर क्या तुम ऐसा समझते हो कि तुम सजीव हो ? तुम तो दस सहस्र वर्षों से सुरक्षित रखे हुए मृत देह जैसे ही हो ! भारतवर्ष में जो थोड़ी-बहुत जीवन-शक्ति अभी भी है, वह उन्हीं में मिलेगी, जिन्हें तुम्हारे पूर्वज 'चलते-फिरते, सड़े, गन्दे मांसपिण्ड' मानकर घृणा करते थे, और यथार्थ में 'चलते हुए मुरदे' तो तुम लोग हो। तुम्हारे घर-द्वार, तुम्हारे साज-सामान ऐसे निर्जीव और पुराने हैं कि वे अजायबघर के नमूनों के समान दिखायी देते हैं, और तुम्हारे रीति-रिवाज, चाल-ढाल और रहन-सहन को देखकर कोई भी यही सोचेगा कि 'नानी की कहानी' सुन रहा है ! तुमसे व्यक्तिगत परिचय प्राप्त कर लेने के बाद भी जब वह घर लौटता है, तो मानो यह सोचता है कि वह कला-भवन के रंगीन चित्र देखने गया था ! ऐ भारत के उच्च वर्गवालों, तुम तो माया के इस संसार में मानो इन्द्रजाल हो, रहस्य हो, मरुमरीचिका हो ! एकत्र मिश्रित विभिन्न भूतकालिक क्रियाओं के तुम केवल द्योतक मात्र हो। तुमको अभी भी वर्तमान समय में कोई देख रहा है—यह तो मानो केवल अजीर्ण के कारण होनेवाला भयानक दुःस्वप्न है। तुम तो भविष्य के शून्याकार, सारहीन, अस्तित्वरहित पदार्थ हो ! स्वप्न-राज्य के नागरिक ! तुम लोग और अधिक समय तक क्यों भटक रहे हो ? तुम भूतकालीन भारत के मृत शरीर के मांसहीन, रक्तहीन अस्थिककाल जैसे हो—तुम शीघ्र ही अपने को मिट्टी में मिलाकर हवा में अदृश्य क्यों नहीं हो जाते ? तुम्हारी अस्थिमयी अँगुलियों में तुम्हारे पूर्वजों के संग्रह किये हुए रत्न की कुछ अमूल्य मुद्रिकाएं हैं और बहुत सी प्राचीन सम्पत्ति की पिटारियाँ तुम्हारे दुर्गन्धयुक्त मृत शरीर की छाती से चिपकी हुई सुरक्षित रखी हुई हैं। अब तक तुमको उन्हें दूसरों को सौंप देने का अवसर नहीं मिला था। अब उन सब वस्तुओं को अपने उत्तराधिकारियों को सौंप दो। यह बात यथासम्भव शीघ्र कर डालो। तुम अपने को शून्य में लीन करके अदृश्य हो जाओ और अपने स्थान में 'नव भारत' का उदय होने दो। उसका उदय हल चलानेवाले किसानों की कुटिया से, मछुए, मोचियों और मेहतरों की झोपड़ियों से हो। बनिये की दूकान से, रोटी बेचनेवाले की भट्ठी के पास से वह प्रकट हो। कारखानों, हाटों और बाजारों से वह निकले। वह 'नव भारत' अमराइयों और जंगलों से, पहाड़ों और पर्वतों से प्रकट हो। ये साधारण लोग सहस्रों वर्ष अत्याचार सहते आये हैं—बिना कुड़बुड़ाये उन्होंने यह सब सहा है और परिणाम में उन्होंने आश्चर्यकारक धैर्य-शक्ति प्राप्त कर ली है। वे सतत विपत्ति सहते रहे हैं, जिससे उन्हें अविरल जीवन-शक्ति प्राप्त हो गयी है। मुट्ठी भर अन्न से पेट भरकर वे संसार को कँपा सकते हैं, उनको तुम केवल आधी रोटी दे दो, और देखोगे कि सारे संसार का विस्तार उनकी शक्ति के समावेश के लिए पर्याप्त न होगा। उनमें 'रक्तबीज' की अक्षय जीवन-शक्ति भरी है। इसके अतिरिक्त, उनमें पवित्र और नीतियुक्त जीवन से आनेवाला वह आश्चर्यजनक बल है, जो संसार में अन्यत्र नहीं मिलता। ऐसी शान्ति, ऐसा सन्तोष, ऐसा प्रेम और चुपचाप सतत कार्य करने की ऐसी शक्ति और कार्य के समय इस प्रकार सिंह-बल प्रकट करना—यह सब तुम्हें अन्यत्र कहाँ मिलेगा ? भूतकाल के कंकाल ! देखो, तुम्हारे सामने तुम्हारे उत्तराधिकारी खड़े हैं—भावी

भारतवर्ष खड़ा है। अपने खजाने की उन पिटारियों को और उन रत्नजड़ित मुद्राओं को उनके बीच जितनी जल्दी हो सके, फेंक दो और तुम हवा में मिल जाओ, फिर कभी दिखायी न दो—केवल अपने कानों को खोले रखो। अपने अदृश्य होते ही तत्काल तुम पुनर्जात भारतवर्ष का वह प्रथम उद्‌घोष सुनोगे, जिसकी करोड़ो गर्जनाओं से सारे विश्व में यही पुकार गूँजती रहेगी—'वाह गुरु की फतह' !"१

उपर्युक्त शब्दों में विवेकानन्द ने ब्राह्मणों और उच्च वर्णवालों को उनके दोषों के लिए धिक्कारते हुए उन्हें जो अदृश्य हो जाने के लिए कहा है तथा उनके स्थान पर पददलित, पीड़ित और त्रस्त निम्न जाति के लोगों के ऊपर उठने का जो शंखनाद किया है, उसका सानी भारत के इतिहास में अन्य किसी महापुरुष के जीवन में नहीं मिलता। विवेकानन्द ने शूद्रों को ऊपर उठाने तथा उन्हें ब्राह्मणों के समकक्ष लाने के लिए जो किया, उसकी मिशाल अन्यत्र कहीं मिलती नहीं। तभी तो श्री बी० आर० आम्बेडकर ने श्री एम० ओ० माथाइ से कहा था, "विगत कुछ शताब्दियों में भारत ने जिस सर्वश्रेष्ठ पुरुष को जन्म दिया है, वह गाँधी नहीं, विवेकानन्द है।"२

दूसरी शिकायत भी कि विवेकानन्द को भारतीय जनता की गरीबी से कोई सरोकार नहीं था, सही नहीं है। असल में, अमेरिका और इंग्लैण्ड की ओर उनका गमन भारतवर्ष के उत्थान की अपनी विशिष्ट योजना को साकार करने के लिए साधनों की तलाश हेतु हुआ था। वे देश के नवजागरण के लिए और उसकी भौतिक दुरवस्था को दूर करने के लिए विदेश गये थे। वे भारत की निर्धनता के निवारण के लिए अपने मस्तिष्क की शक्ति से धनोपार्जन करना चाहते थे, ताकि वे अपने जीवन के लक्ष्य को रूपायित कर सकें।३ विश्वप्रसिद्ध विवेकानन्द बन जाने के बाद भी उनके हृदय में गरीबों के लिए वही टीस थी। वे अपने एक पत्र में लिखते हैं—"भारत के लाख-लाख अनाथों के लिए कितने लोग रोते हैं? हे भगवान्, क्या हम मनुष्य हैं? तुम लोगों के घरों के चतुर्दिक जो पशुवत् भंगी-डोम हैं, उनकी उन्नति के लिए क्या कर रहे हो? उनके मुख में एक ग्रास अन्न देने के लिए क्या करते हो? बताओ न? उन्हें छूते भी नहीं, और उन्हें 'दूर'-'दूर' कह भगा देते हो। क्या हम मनुष्य हैं? वे हजारों साधु-ब्राह्मण भारत की नीच दरिद्र जनता के लिए क्या कर रहे हैं? 'मत छू' 'मत छू' बस यही रट लगाते हैं!" "मैं इस देश में कुतूहलवश नहीं आया, न नाम के लिए, न यश के लिए, परन्तु भारत के दरिद्रों की उन्नति करने का उपाय ढूँढ़ने आया।"४

रोमाँ रोलाँ विवेकानन्द की असीम करुणा का चित्रण करते हैं। जब विवेकानन्द के पीछे अमरीकी शान-शौकत, ऐश्वर्य और विलास छाया की तरह चल रहे थे, तब "रात को अपने शयनागार में लेटे-लेटे भूख से मरते हुए लोगों का ध्यान करते ही वह चीत्कार करके भूमि पर लोटने लगते। 'माँ', वह कराहकर पुकारते, 'कीर्ति को लेकर मैं क्या करूँ, मेरे भाई तो अभाव के गर्त में पड़े हैं!' "५

शिकागो की धर्म-महासभा में भी गरीबों के लिए उनकी यह तड़प व्यक्त होने से नहीं रुकी। २० सितम्बर १८९३ को उन्होंने ज्वलन्त स्वर में कहा था—"...... आप ईसाई लोग जो मूर्तिपूजकों की आत्मा का उद्धार करने के निमित्त अपने धर्म-प्रचारकों को भेजने के लिए इतने उत्सुक रहते हैं, उनके भूख से तड़पकर मरते हुए शरीर को बचाने के लिए कुछ क्यों नहीं करते ?.........

१. स्वामी विवेकानन्द कृत 'जाति, संस्कृति और समाजवाद', पृष्ठ ८६-८७

२. एम. ओ. माथाइ कृत 'रेमिनिसेंसेज आफ दि नेहरू एज,' पृष्ठ २५।

३. 'विवेकानन्द साहित्य', खंड १, पृष्ठ ४०५।

४. विवेकानन्द साहित्य', खंड २, पृष्ठ ३९६।

५. रोमाँ रोलाँ—'विवेकानन्द', अनु०—स० ही० अज्ञेय तथा रघुवर सहाय, पृष्ठ ८४।

आप लोग सारे हिन्दुस्तान में गिरजे बनाते हैं, पर पूर्व का प्रधान अभाव धर्म नहीं है, उनके पास पर्याप्त धर्म है—जलते हुए हिन्दुस्तान के लाखों दुःख से तड़पते भूखे लोग सूखे गले से रोटी के लिए चिल्ला रहे हैं। वे हमसे रोटी मांगते हैं और हम उन्हें देते हैं पत्थर। क्षुधातुरों को धर्म का उपदेश देना उनका अपमान करना है, भूखों को दर्शन सिखाना उनका अपमान करना है। .... मैं यहाँ अपने दरिद्र भाइयों के निमित्त सहायता माँगने आया था। पर यह मैं पूरी तरह समझ गया हूं कि मूर्तिपूजकों के लिए ईसाई धर्मावलम्बियों से, और विशेष कर उन्हीं के देश में, सहायता प्राप्त करना कितना कठिन है।"६

विवेकानन्द ने अनुभव किया था कि 'पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों और नीच जातिवालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो" ७ अतः उन्होंने धर्म को शोषण और अन्धविश्वास से मुक्त करने का बीड़ा उठाया था। तभी तो अपने शिष्यों की नसों में विद्युत्-संचार करते हुए उन्होंने अमरीका से लिखा था—"तथाकथित धनिकों पर भरोसा न करो, वे जीवित की अपेक्षा मृत ही अधिक हैं। आशा तुम लोगों से है—जो विनीत, निरभिमानी और विश्वासपरायण हैं।···दुखियों का दर्द समझो और ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करो—वह अवश्य मिलेगी। मैं बारह वर्ष तक हृदय पर यह बोझ लादे और सर में यह विचार लिए बहुत से तथाकथित धनिकों और अमीरों के दर-दर घूमा। हृदय का रक्त बहाते हुए मैं आधी पृथ्वी का चक्कर लगाकर इस अजनबी देश में सहायता माँगने आया। ······भगवान्······मेरी सहायता करेगा। मैं इस देश में भूख या जाड़े से भले ही मर जाऊँ परन्तु, युवको, मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपन प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ। जाओ, इसी क्षण जाओ उस पार्थसारथि के मन्दिर में, जाकर साष्टांग प्रणाम करो और उनके सम्मुख एक महाबलि दो, अपने समस्त जीवन की बलि दो······और प्रतिज्ञा करो कि अपना सारा जीवन इन तीस करोड़ लोगों के उद्धार-कार्य में लगा दोगे, जो दिनोंदिन अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं।"८

उपर्युक्त उद्धरणों से यही प्रमाणित होता है कि विवेकानन्द देश की गरीबी को वरदान नहीं, अभिशाप मानते थे और उन्होंने किसी भी कीमत पर इस दारिद्र्य-दानव का नाश ही करना चाहा था।

अब तीसरी और अन्तिम शिकायत लें, जिसमें विवेकानन्द को अंग्रेजों का पृष्ठपोषक और हिमायती ठहराया गया है तथा उन्हें स्वातंत्र्य के बदले पलायन का मंत्रदाता माना गया है। हमारे राष्ट्र के जितने भी स्वातंत्र्य सेनानी हो गये हैं, सभी ने एक स्वर से भारत की स्वाधीनता में विवेकानन्द से प्राप्त प्रेरणा को प्रमुख कारण के रूप में घोषित किया है। महात्मा गांधी ने कहा था, "मैंने स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थों को बहुत अच्छी तरह पढ़ा है। फलस्वरूप अपने देश के प्रति मेरा जो प्रेम था, वह हजारगुना बढ़ गया है।"९ पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "पता नहीं कि आज की पीढ़ी में से कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों और लेखों को पढ़ते हैं। पर मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी पीढ़ी के बहुत से लोगों पर उनका बहुत सशक्त प्रभाव पड़ा था।··· वे साधारण अर्थ में कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी, मेरी राय में, वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे, और आगे चलकर जिन लोगों ने आन्दोलन में थोड़ा या बहुत सक्रिय भाग लिया, उनमें से अनेक

६. 'विवेकानन्द साहित्य', खण्ड १, पृष्ठ २२।

७. 'विवेकानन्द साहित्य', खंड १, पृष्ठ ४०३।

८. वही, पृष्ठ ४०५।

९. रोमाँ रोलाँ—'प्रॉफेट्स ऑफ दि न्यू इंडिया', पादटिप्पणी, पृष्ठ ५०१—२

के प्रेरणास्रोत स्वामी विवेकानन्द थे।"१० योगी अरविन्द लिखते हैं. "यदि कभी कोई शौर्य पुरुष था, तो वह विवेकानन्द थे। वे पुरुषों में सिंह थे।"११ नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने अपने एक पत्र में लिखा था, "......उन्होंने (विवेकानन्द ने) अपने समूचे जीवन को समग्र राष्ट्र एवं मानवता के नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के लिए समर्पित कर दिया था।......आधुनिक भारत उन्हीं की सृष्टि है"१२ चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने लिखा था, 'स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म को बचाया और इस प्रकार भारत की रक्षा की। वे न होते, तो हम अपना धर्म गँवा बैठते और आजादी नहीं पा सकते थे। अतएव हम सभी बातों के लिए विवेकानन्द के ऋणी हैं।"१३ रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा था, "(विवेकानन्द का) कितना उदात्त सन्देश है! ...हमारे समग्र मनुष्यत्व को जगाने की पुकार है। उसने हमारे बहुत से युवकों को कर्म त्याग और बलिदान के माध्यम से स्वातंत्र्य के विभिन्न पथों पर चलने की प्रेरणा दी"१४

ये तो हुए कुछ स्वातंत्र्य सेनानियों के उद्‌गार। अब विवेकानन्द के राष्ट्रवादी विचारों को जरा देखें। जब विवेकानन्द अपनी दूसरी अमरीकी यात्रा से वापस लौटे, तो उन्होंने सन् १९०२ में अपनी मृत्यु से कुछ ही पहले प्रोफेसर कामाक्ष्या मित्र से बेलुड़ मठ में कहा था, "आज भारत को जिस चीज की जरूरत है, वह है बम!"१५ और उल्लेखनीय है कि १९०८ में बंगाल में बम आ गया। रोमां रोलाँ ने लिखा है, "भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन बहुत समय तक धूमायित होता रहा, जब तक कि विवेकानन्द के निःश्वास ने राख को उड़ाकर अग्नि को धधका न दिया, और वह उनकी मृत्यु के तीन वर्ष बाद १९०५ ई० में जोरों से भड़क उठा।"१६ पुनः, "विवेकानन्द का नव-वेदान्तवाद उनके जोशोन्मत्त राष्ट्र की धमनियों में तेज शराब की तरह फैल गया।....और यह एक निस्सन्दिग्ध सत्य है कि विवेकानन्द के इस नव-वेदान्तवाद ने इस विकास-प्रक्रिया को उल्लेखनीय सहायता प्रदान की।"१७

फिर, प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता डा० जदुगोपाल मुखर्जी अपने एक पत्र में लिखते हैं, "प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वामीजी का (क्रान्तिकारी दल पर) प्रभाव प्रबल था।" वे उसमें जाने-माने व्यक्तियों के नाम लिखते हैं, जो अपने जीवनकाल में स्वामीजी के पास जाया करते थे और जो बाद में राष्ट्रवादी एवं क्रान्तिकारी आन्दोलनों के महान् नेता हुए। मुखर्जी आगे लिखते हैं, "चूँकि क्रान्तिकारी साहित्य हमें मिल नहीं पाता था, हमलोग स्वामीजी की 'पत्रावली', शरच्चन्द्र चक्रवर्ती द्वारा लिखा 'स्वामी विवेकानन्द के संग में', उनके 'भारत में विवेकानन्द' नामक भारतीय व्याख्यान संग्रह पढ़ा करते, जो हमारे हृदय में शोले भड़का देते।"१८ ये क्रान्तिकारी युवक किस प्रकार विवेकानन्द और गीता से अनुप्राणित हो हँसते-हँसते मौत को गले लगा लेते, इसका बड़ा सुन्दर विवरण हमें भारतीय विद्याभवन, बम्बई से प्रकाशित 'दि हिस्ट्री ऐंड कल्चर आफ इंडियन पीपुल' में प्राप्त होता है।१९

विवेकानन्द की अमरीकन शिष्या मिस मैकलाउड ने प्रसिद्ध विप्लवी-क्रान्तिकारी डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त को अमरीका में सन् १९११ में बताया था, "सी० आई० डी० अफसर डेनहैम ने मुझसे कहा था कि हम

१०. जवाहर लाल नेहरु—'श्री रामकृष्ण एण्ड स्वामी विवेकानन्द', पृष्ठ ४—६

११. अरविन्द—'बंकिम, तिलक, दयानन्द'

१२. 'मराठा' (अंग्रेजी) के० आर० भट्ट को ६. ५. १९३२ को लिखित।

१३. 'स्वामी विवेकानन्द सेंटीनरी मेमोरियल वाल्यूम', कलकत्ता १९६३, 'होमेज'।

१४. 'प्रवासी' (बँगला), खंड २८, भाग १, पृष्ठ २८६।

१५. भूपेन्द्रनाथ दत्त—'स्वामी विवेकानन्द पेट्रियॉट प्रॉफेट', पृष्ठ २१२।

१६. रोमां रोलाँ—'प्रॉफेट्स ऑफ दि न्यू इंडिया,' पृष्ठ ४९७।

१७. वही, पृष्ठ ५०१। १८. भूपेन्द्रनाथ दत्त—उपर्युक्त, पृष्ठ २१३। १९. खण्ड ११, पृष्ठ

लोगों ने जिस किसी क्रान्तिकारी के घर छापा मारा, वहीं हमें विवेकानन्द की पुस्तकें मिलीं।"२० रोमाँ रोलाँ लिखते हैं कि राजनैतिक कैदियों में से अनेकों के पास गीता एवं विवेकानन्द की रचनाओं की प्रतियाँ मिली थीं।२१ बहुत से क्रान्तिकारियों को रामकृष्ण मिशन ने शरण दी, जिन्हें उनके निकट के सम्बन्धी भी ब्रिटिश सरकार के डर के मारे अपने घर में स्थान देने में हिचकते थे। अतः आश्चर्य नहीं कि ब्रिटिश सरकार मिशन के विरुद्ध हो गयी। १९१६ में बंगाल के प्रथम गवर्नर लार्ड कारमाइकेल ने सार्वजनिक तौर पर मिशन की आलोचना करते हुए कहा कि आतंकवादी लोग अपने लक्ष्य को अधिक सरलतापूर्वक पाने के लिए उसके सदस्य होते जा रहे हैं।२२ एक सरकारी रिपोर्ट ने ब्रिटिश सल्तनत के विरुद्ध देश के जागरण के लिए विवेकानन्द को दोषी माना। रिपोर्ट ने कहा कि बारीन्द्र कुमार घोष और उसके भाई अरविन्द घोष इन दोनों ने अपने सहकर्मियों के साथ मिलकर जो "भारतीय स्वातंत्र्य के सिद्धान्त की घोषणा की, उसमें विवेकानन्द का प्रभाव सहायक हुआ···। अनेक छात्रावास और विद्यार्थी-केन्द्र विश्वसनीय गवाहों के उस कथन की पुष्टि में साक्ष्य प्रदान करते हैं कि बंगाल के तरुणों में विवेकानन्द की किताबें अतिशय लोकप्रिय हैं। इन किताबों का आकर्षण इस सत्य में निहित है, जैसा कि एक कालेज के प्राचार्य ने बताया, कि 'उनके (विवेकानन्द के) उपदेशों ने धार्मिक प्रवृत्तियुक्त राष्ट्रवाद को जन्म दिया'।"२३

ये उद्धरण सिद्ध करते हैं कि विवेकानन्द कैसे 'अग्निखोर' क्रान्तिकारी थे। पलायनवाद की लेशमात्र गन्ध भी उनके धधकते व्यक्तित्व के सामने ठहर न सकती थी। उन्होंने अंग्रेजों के किसी विशिष्ट गुण की भले ही प्रशंसा की हो (और गुण की प्रशंसा की ही जानी चाहिए), पर जहाँ तक अंग्रेजों द्वारा भारत के किये जा रहे शोषण का प्रश्न था, विवेकानन्द ने वहाँ कोई समझौता नहीं किया। उन्होंने विदेशी साम्राज्य की कटु आलोचना करते हुए कहा था, "भगवान् अंग्रेजों को सजा देंगे। उन्होंने हमारी गर्दन पर अपनी एड़ियाँ रख ली हैं। उन्होंने अपने सुखों के वास्ते हमारे खून की आखिरी बूँद तक चूस ली है। वे हमारे करोड़ों रुपये उठा ले गये हैं, जबकि हमारी जनता के गाँव-गाँव और पूरे प्रान्त भूख से मर रहे हैं।"२४

अन्त में, हम विवेकानन्द का वह पत्र उद्धृत करते हैं, जो उनके विदेश-यात्रा से लौटने के ढाई वर्ष पश्चात् उनकी अनुयायी कुमारी हेल को ३० अक्तूबर १८९९ को लिखा गया था। यह पत्र ब्रिटिश साम्राज्य के साथ विवेकानन्द का कैसा सम्बन्ध था उसे सही रूप में हमारे समक्ष रखता है और यह बताता है कि उसके सम्बन्ध में विवेकानन्द की धारणा कैसी थी। विवेकानन्द लिखते हैं, "······आधुनिक भारत में अंग्रेजी शासन का केवल एक ही सान्त्वनादायक पक्ष है कि एक बार फिर उसने अनजाने ही भारत को विश्व के रंगमंच पर लाकर खड़ा कर दिया है, उसने बाह्यजगत् के सम्पर्क को इस पर लाद दिया है। अगर जनता के मंगल के लिए यह किया गया होता, तो जिस तरह परिस्थितियों ने जापान की सहायता की, भारत के लिए इसका परिणाम और भी आश्चर्यजनक होता। जब मुख्य ध्येय खून चूसना हो, तो कोई कल्याण नहीं हो सकता। मोटे रूप से जनता के लिए पुराना शासन अधिक अच्छा था, क्योंकि जनता से वह सब कुछ नहीं छीनता था और उसमें कुछ न्याय था,

---

२०. भूपेन्द्रनाथ दत्त, उपर्युक्त, पृष्ठ २१४।

२१. 'यूनीवर्सल गॉस्पेल', पृष्ठ ३२४।

२२. वही, पृष्ठ ३२५

२३. 'दि बंगाल डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन कमिटी रिपोर्ट आॅफ १९१५'।

२४. मेरी लुइस बर्क—'स्वामी विवेकानन्द इन अमेरिका, न्यू डिस्कवरीज', पृष्ठ २४

कुछ स्वतंत्रता थी। कुछ सौ आधुनिकृत, अर्धशिक्षित एवं राष्ट्रीय चेतनाशून्य पौरुष ही वर्तमान अंग्रेजी शासन का दिखावा है—और कुछ नहीं।.... भारत को जीतने के लिए अंग्रेजी के संघर्ष के मध्य शताब्दियों की अराजकता, अंग्रेजों द्वारा १८५७-५८ में किये गये भयावह जनवधों और इससे भी अधिक भयावह अकालों, जो अंग्रेजी शासन के अनिवार्य परिणाम बन गये हैं (देशी राज्यों में कभी अकाल नहीं पड़ता) और उनमें लाखों प्राणियों की मृत्यु के बावजूद जनसंख्या में काफी वृद्धि होती रही है, तब भी जनसंख्या उतनी नहीं है, जब देश पूर्णतः स्वतंत्र था—अर्थात् मुस्लिम शासन के पूर्व। भारतीय श्रम एवं उत्पादन से भारत की वर्तमान आबादी की पाँचगुनी आबादी का भी आसानी से निर्वाह हो सकता है, यदि भारतीयों की सारी वस्तुएँ उनसे छीन न ली जायँ।

"यह आज की स्थिति है—शिक्षा को भी अब अधिक नहीं फैलने दिया जाएगा, प्रेस की स्वतंत्रता का गला पहले ही घोंट दिया गया है, (निरस्त्र तो हम पहले से ही कर दिए गये हैं) और स्वशासन का जो थोड़ा अवसर हमको पहले दिया गया था, शीघ्रता से छीना जा रहा है। हम इन्तजार कर रहे हैं कि अब आगे क्या होगा। निर्दोष आलोचना में लिखे कुछ शब्दों के लिए लोगों को कालापानी की सजा दी जा रही है, अन्य लोग बिना कोई मुकदमा चलाये जेलों में ठूँसे जा रहे हैं, और किसी को कुछ पता नहीं कि कब उसका सर धड़ से अलग हो जायगा।

"कुछ वर्षों से भारत में आतंकपूर्ण शासन का दौर है। अंग्रेज सिपाही हमारे देशवासियों का खून कर रहे हैं, हमारी बहनों को अपमानित कर रहे हैं—हमारे खर्च से ही यात्रा का किराया और पेन्शन देकर स्वदेश भेजे जाने के लिए। हमलोग घोर अन्धकार में हैं—ईश्वर कहाँ है? मेरी, तुम आशावादिनी हो सकती हो, लेकिन क्या मेरे लिए यह सम्भव है? मान लो तुम इस पत्र को केवल प्रकाशित भर कर दो—तो उस कानून का सहारा लेकर जो अभी-अभी भारत में पारित हुआ है, अंग्रेजी सरकार मुझे यहाँ से भारत घसीट ले जायगी और बिना किसी कानूनी कार्यवाही के मुझे मार डालेगी। और मुझे यह मालूम है कि तुम्हारी सभी ईसाई सरकारें इस पर खु[illegible]याँएँगी, क्योंकि हम गैर-ईसाई हैं। एक ईसाई के लिए गैर-ईसाई की हत्या भी वैधानिक मनोरंजन है।...

"शिक्षा-संचालन के लिए पूर्ववर्ती सरकारों द्वारा अनुदत्त सम्पत्ति एवं जमीन को गले के नीचे उतार लिया गया है, और वर्तमान सरकार रूस से भी कम शिक्षा पर व्यय करती है। और शिक्षा भी कैसी? मौलिकता की किंचित् अभिव्यक्ति भी दबा दी जाती है। मेरी, अगर कोई वास्तव में ऐसा ईश्वर नहीं है, जो पिता है, जो निर्बल की रक्षा करने में सबल से भयभीत नहीं है और जिसे रिश्वत नहीं दिया जा सकता, तो सब कुछ हमारे लिए निराशा ही है!'२५

तो, ये हैं विवेकानन्द, जिन्होंने भारत को अस्मिता दी, आत्म—प्रत्यय दिया, राष्ट्र को अपने क्रान्तिकारी विचारों से एक नयी स्फूर्ति, प्रेरणा और दिशा दी। उन्हें पलायनवादी कहना भाषाशास्त्र का उपहास करना है। रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में, "विवेकानन्द के उपदेशों से ही भारतवासी अपने पतन की गहराई माप सके, अपने शारीरिक क्षय एवं आधिभौतिक विनाश, अपनी क्रिया-विमुखता और आलस्य तथा अपने पौरुष के भयानक ह्रास को पहचान सके। और विवेकानन्द की वाणी में ही सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ एवं लोगों में अपने भविष्य के प्रति उज्ज्वल आशा संचारित हुई.... ...।"२६

— ✲ —

२५. 'विवेकानन्द साहित्य', खंड ७, पृष्ठ १०१।

२६. 'संस्कृति के चार अध्याय', पृष्ठ ५०१—१०।

युग-धर्म प्रवर्त्तक : श्रीरामकृष्ण देव

डॉ० विमलेश्वर डे, पी-एच० डी० (लन्दन)

[श्रीमत स्वामी श्रीधरानन्दजी महाराज, सचिव, रामकृष्ण मिशन, लखनऊ द्वारा रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में दिये गये एक प्रवचन पर आधारित।—लेखक]

श्री रामकृष्ण देव को युग धर्म का प्रवर्त्तक कहा जाता है। ऐसा क्यों कहा जाता है, इस पर विचार करने की आवश्यकता है। क्या वे सर्वथा एक नये धर्म को स्थापित करने के लिए अवतरित हुए थे ? स्वयं श्रीरामकृष्ण द्वारा दिये गये संदेशों या उनकी प्रमुख संन्यासी संतानों के निबंधों को पढ़ने से ऐसा नहीं प्रतीत होता। ऐसी स्थिति में उन्हें युग धर्म-प्रवर्त्तक कहने का क्या तात्पर्य है ? युग-युग से इस पुण्य भूमि भारतवर्ष में अवतारी पुरुषों का आविर्भाव हुआ है। इनमें से प्रत्येक ने युगोपयोगी किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि की है। त्रेता युग में श्रीरामचन्द्र का अविर्भाव हुआ था। उस समय राक्षसों के अत्याचार एवं अनाचार चरम सीमा पर पहुँच चुके थे। फलस्वरूप ऋषि-मुनियों की तपस्या आदि में प्रचुर बाधाएँ उत्पन्न होने लगी थीं। श्रीरामचन्द्र ने उन आततायी असुरों का विनाश कर उनके अनाचारसे भारत भूमि को मुक्त किया। द्वापर में श्रीकृष्ण का अवतार हुआ। उन्होंने भी कंस तथा अन्य असुरों का वध करके धर्म-राज्य की पुनः प्रतिष्ठा की। अवतार-- पुरुष भगवान् बुद्ध ने कठोर ब्रह्मवाद का प्रतिरोध किया। उन्होंने जाति-धर्म का भेद मिटाकर समाज के हर वर्ग के लोगों को समान रूप से धर्माचरण एवं शास्त्र अध्ययन करने की मान्यता प्रदान की। ब्रह्मविद् शंकराचार्य ने समस्त भारत भूमि--काश्मीर से कन्याकुमारी तथा द्वारका से जगन्नाथ पुरी—का पर्यटन कर वेद तथा उपनिषद् के मूल तत्त्व 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का प्रचार किया। मध्य युग में चैतन्यदेव ने ब्राह्मण से चांडाल तक सभी व्यक्तियों को अपने प्रेम का अमृत प्रदान किया तथा ईश्वर-चेतना की जो धारा यवन-शासन में अवरुद्ध हो गयी थी उसे पुनः प्रवाहित किया और हरि नाम के महत्व को फिर से प्रतिष्ठित किया।

युगावतार श्रीरामकृष्ण देव की विशेषताओं के विषय में स्पष्ट धारणा के लिए, जिस युग में उनका अवतरण हुआ था, उसकी स्थितियों का ज्ञान रहना आवश्यक है। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत से ईस्ट इंडिया कंपनी का आधिपत्य समाप्त हो गया और उसकी जगह पर ब्रिटेन ने भारत के शासन का अधिकार प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथों में ले लिया। अंग्रेजी शासन के प्रतिष्ठित होने के समय से ही हमारी प्रचलित समाज—व्यवस्था—धर्म, आचार-व्यवहार, शिक्षा, संस्कृति आदि—पर पाश्चात्य प्रभाव ने जबर्दस्त धक्का दिया। अंग्रेजी शासन के सुप्रतिष्ठित होने के साथ ही साथ इस देश में शिल्प-विप्लव का आरंभ हुआ। पश्चिमी देशों में यह औद्योगिक क्रांति—विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप हुई। एक ओर विज्ञान की प्रगति और दूसरी ओर औद्योगिक क्रांति—इन दोनों के प्रभाव से हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति पर गहरा आघात लगा। बंगाल उन दिनों न केवल अँग्रेजों के व्यवसाय तथा वाणिज्य का केन्द्र बन गया था, बल्कि अंग्रेजी शासन का केन्द्र भी हो गया था। इसलिए विशेष रूप से बंगाल में समाज के हर स्तर पर पाश्चात्य-प्रभाव भयानक रूप से पड़ने लगा था। इस प्रभाव का परिणाम क्या हो सकता है, इसे जानने से ही इस युग की स्थिति स्पष्ट हो जाएगी।

विज्ञान की निरंतर प्रगति के कारण पश्चिमी देशों में नये-नये उद्योगों का जन्म होने लगा जिससे पश्चिमी जगत् के लोग जड़वादी एवम् भोगवादी बन गये। ठीक ऐसा ही परिणाम उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस देश में भी हुआ। यंत्र-आश्रित उद्योग ने यहाँ के मनुष्य के मन मे यह विश्वास भर दिया कि विज्ञान के कारण

जिस शिल्प तथा उद्योग का विकास हुआ उससे मनुष्यों की दैहिक सुख-सम्पदा बढ़ी है और यही है जीवन की परम सुख-प्राप्ति का मूल स्रोत। वे मानने लगे कि धर्म और ईश्वरोपलब्धि आदि का आदर्श जो भारत के सनातन धर्म का मूल तत्व रहा है वह लोगों की कल्पना की उपज मात्र है तथा चूँकि विज्ञान धर्म और पारमार्थिक तत्वों को स्वीकार नहीं करता है अतः इन्हें जीवन का मूल लक्ष्य समझना ठीक नहीं है। ये सब पुराने कुसंस्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। इन सब कारणों से उस समय के समाज और मनुष्य के जीवन में एक अभूतपूर्व विपर्यय उपस्थित हो गया। इस विपर्यय से पाश्चात्य विज्ञान पर आधारित जड़वादी आदर्श और पूरब के धर्म पर आश्रित आदर्श के बीच संघर्ष उत्पन्न होने लगा।

बंगाल की तत्कालीन सामाजिक स्थिति से जो लोग अवगत हैं वे निश्चय ही यह स्वीकार करेंगे कि भारतीय संस्कृति और जीवनवेद का जो मूलभूत आदर्श है—अर्थात् आध्यात्मिकता—उस आदर्श में, इस संघर्ष के कारण, पश्चिमी शिक्षा में पले ढले लोगों के मन में अविश्वास उत्पन्न हो गया। लोग जड़वाद एवं भोगवाद को जीवन के मूल उद्देश्य के रूप में स्वीकार करने के लिए उत्साहित हो गये। इसी युग के संधि-क्षण में या संक्रांति वेला में श्री रामकृष्ण देव का आविर्भाव हुआ। वे भारत के सनातन आध्यात्मिक आदर्श के थे एक ज्वलन्त प्रतिभू। इसीसे फ्रांसीसी मनीषी रोमाँ रोलाँ ने उन के सम्बन्ध में लिखा है—"रामकृष्ण तीस करोड़ भारतवासियों के दो हजार वर्षों की आध्यात्मिक साधना की चरम एवं पूर्ण परिणति थे।" रोमाँ रोलाँ ने ऐसा क्यों कहा? सीधी भाषा में कहा जा सकता है कि इसका कारण है श्रीरामकृष्ण देव का देवतुल्य जीवन और साधन।

क्या श्रीरामकृष्ण किसी नये धर्म की स्थापना करने का उद्देश्य लेकर अवतरित हुए थे? स्वामी विवेकानन्द ने जो अपने प्रणाम मन्त्र में अपने गुरुदेव के विषय में कहा है—'स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे'—उसका क्या तात्पर्य है? इसे हमें समझ लेना चाहिए। हिन्दू धर्म के प्रमुख आध्यात्मिक पन्थों का अवलंबन कर श्री रामकृष्ण देव ने बारह वर्षों तक कठोर साधना में निमग्न रहकर वेद और उपनिषद् द्वारा प्रचारित सब तथ्यों एवं सत्यों का साक्षात्कार किया। इसकी आवश्यकता थी। विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के बीच बहुत सारे भेद एवं वैषम्य के भाव भर आ गये थे। रामकृष्ण देव ने अपने जीवन और साधना से दिखलाया कि सभी धर्म ईश्वर को पाने के भिन्न-भिन्न पथ हैं—मूल में सब एक हैं। यह सत्य रामकृष्ण देव की कल्पना से उत्पन्न नहीं हुआ था—यह था अपने जीवन में की हुई उनकी साधना से उपलब्ध सत्य। इस प्रकार विभिन्न धर्मों के बीच जो विलक्षण समन्वय उन्होंने स्थापित किया वैसा उनसे पहले किसी अवतार पुरुष ने नहीं किया था। इसे हम अपने आध्यात्मिक इतिहास में एक युगान्तकारी योगदान के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण देव ने मनुष्यों के मन में धर्म की नींव को सुदृढ़ कर दिया।

अब एक अन्य युगान्तकारी घटना की ओर हम अपनी दृष्टि डालेंगे। यह घटना थी स्वामी विवेकानन्द जी का आविर्भाव। वे थे पाश्चात्य शिक्षा में रंगे उच्चशिक्षित युवक, किन्तु उनका अन्तःकरण था आध्यात्मिक प्रेरणापूर्ण ईश्वराभिमुखी मन, किन्तु ईश्वर के सम्बन्ध में अनिश्चयता एवं संशय मूर्तिपूजा एक कुसंस्कार है, ऐसा उनका मनोभाव था। निराकार साधना के प्रति मानसिक प्रवणता रहने के कारण वे पहले ब्रह्म समाज के सक्रिय सदस्य थे। ईश्वर है या नहीं इस सम्बन्ध में कोई उनको विश्वसनीय उत्तर नहीं दे सका। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से भी कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं पाकर वे निराश हो गये थे। ठीक इसी उद्वेलन की घड़ी में श्रीरामकृष्ण देव से उनका साक्षात्कार हुआ। यह साक्षात्कार भी भारत के आध्यात्मिक इतिहास में एक अविस्मरणीय घटना प्रमाणित हुआ।

श्री रामकृष्ण देव थे प्राच्य के शाश्वत सनातन धर्म की प्रतिमूर्ति और विवेकानन्द थे पाश्चात्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा दर्शन और साहित्य से प्रभावित जिज्ञासु

पूर्वक। उन्हें यदि हम पाश्चात्य भाव धारा का प्रतिनिधि कहें तो रामकृष्णदेव और विवेकानन्द के इस मिलन को पूरब के प्रति पश्चिम की चुनौती कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी जब स्वामीजी ने श्री रामकृष्ण देव से 'ईश्वर हैं या नहीं' यह प्रश्न पूछा तो श्री रामकृष्ण देव को एक चुनौती का सामना करना पड़ा। लेकिन उन्होंने स्वामीजी के प्रश्न का सम्यक उत्तर देकर उनके सारे सन्देहों को दूर कर दिया। श्री रामकृष्ण को छोड़कर ऐसा उत्तर देने में दूसरा कौन समर्थ हो सकता था? इस उत्तर का स्रोत थी उनकी दीर्घकालीन कठोर साधना द्वारा परीक्षित उपलब्धि। "ईश्वर हैं और उनका उसी प्रकार दर्शन किया जा सकता है जैसे मैं तुम्हें देख रहा हूँ। इतना ही नहीं, मैं तुम्हें भी दर्शन करा सकता हूँ।" ऐसा द्विधा-रहित, स्पष्ट और गंभीर विश्वास से पूर्ण उत्तर स्वामी जी को अब तक नहीं मिल पाया था। यह उत्तर पाकर वे चकित और स्तंभित रह गये थे।

इस पृष्ठभूमि में श्रीरामकृष्ण की देन पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्नीसवीं सदी के एक युग संधि के क्षण में अवतरित होकर उन्होंने भारत के शाश्वत एवं सनातन धर्म के मूल सत्य को 'जतो मत ततो पथ' (एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति), पुनः प्रतिष्ठित किया एवं उसकी नींव को सुदृढ़ किया। हमलोग जिस विदेशी भावधारा के आवर्त में पड़कर दिशाभ्रष्ट हो गये थे और पाश्चात्य जड़वाद एवं भोगवादी दर्शन को जीवन का मूल लक्ष्य मान बैठे थे श्रीरामकृष्ण देव ने उस मानसिक भ्रान्ति से हमलोगों को मुक्त किया तथा हमें एक उन्मुक्त एवं उदार पथ दिखाया। उनकी कृपा से हमारा धर्म एवं आध्यात्मिकता सुरक्षित हो गयी। ये ही थे युग-धर्म प्रवर्त्तक श्रीरामकृष्ण देव के भारत के धर्म में युगान्तकारी अवदान।

समान्तर धर्म-चिन्तन

विश्व-धर्म : विश्व-नागरिक

राम नन्दन

मानव-चेतना में आज विश्व एक भौगोलिक चित्र मात्र रह गया है। समुद्र, भूखंड, पहाड़, नदियाँ, भिन्न भिन्न देश, सम्प्रदाय, जाति आदि की चर्चा संसार के लोग करते हैं—बस मात्र चर्चा ही। परन्तु, उनके साथ मानव-अंतर का कोई संबंध आज नहीं रह गया है। बल्कि इसके विपरीत संबंधों का अभाव ही नहीं, द्वेषभाव भी मानव हृदय में भरा हुआ है। जहाँ विश्व के साथ कोई आन्तरिकता न हो वहाँ विश्व-शांति की बातें करना निरर्थक प्रचार ही नहीं बल्कि राजनीतिक कलाबाजी है। इसीलिए विश्व-शान्ति के नाम पर आँसू बहाने वाले भीतर-भीतर दिन-रात विश्व-अशान्ति के लिए सारे संसार को हथियारों से लैस कर रहे हैं। रेडियो, टेलिविजन और अखबारों से द्वेष की आग प्रज्वलित करने वालों का विश्व—शान्ति का नाम

आज शायद ही कोई मनुष्य इस संसार में मनुष्य के भाव में बचा है। मानव के ऊपर हमने हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, या हिन्दुस्तानी, पाकिस्तानी, अंग्रेज, रूसी, या धनी—गरीब के दर्जनों लबादे चढ़ा दिये हैं। धार्मिक साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता, विभिन्न विचारधाराओं तथा वादों के लबादे के बोझ के नीचे मानवता का पता ही नहीं चलता। इस भीषण विभीषिका को देखकर और समझकर भी आज न किसी की भावना है और न साहस ही कि वह इन लबादों को फेंक मानव या इंसान की तरह अपने को प्रकट करे। जहाँ मनुष्यता नहीं है, इंसानियत नहीं है वहाँ धर्म, भगवान, प्रेम की चर्चा करना रेगिस्तान के ऊपर पानी की कुछ बूँदें छिड़कने की तरह निरर्थक ही नहीं वरन् एक क्रूर परिहास है।

रूप से द्वेष-भाव जगाया जा रहा है। रेडियो अखबारों, टेपरेकर्ड्स के द्वारा सभी सीमाओं को पार कर द्वेष की अग्नि प्रज्वलित की जा रही है और अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक जगत का एक हिस्सा उसे ऐसा करने को प्रोत्साहित भी कर रहा है। उसी तरह या उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दुस्तान में भी पाकिस्तान के प्रति द्वेष फैल रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक जगत का एक हिस्सा हिन्दुस्तान को पाकिस्तान से लड़ने के लिये उकसा रहा है। इस परिस्थिति में पाकिस्तान में कोई साहसी है क्या जो खुलकर कहे कि हिन्दुस्तानी हमारे भाई हैं और हमारा धर्म है उनसे प्रेम करना। यदि आग सुलग ही गयी तो हिन्दुस्तान के नेताओं में पाकिस्तान के प्रति द्वेष भाव फैलाने की होड़ लग जायगी। पाकिस्तान की मस्जिदों में मुसलमान कुरान शरीफ की आयतें पढ़कर खुदा से दुआ मांगेंगे कि काफिरों का नाश हो और हिन्दुस्तान के मंदिरों में भगवान से प्रार्थना होगी कि पाकिस्तानियों का नाश हो। नानक देव ने विषाद और उपहास के साथ बाबर की फौज के साथ हुए युद्ध का वर्णन किया है और कहा है कि कैसे एक तरफ 'अल्लाहू अकबर' के नारे लगते थे और दूसरी ओर हिन्दू देवी-देवताओं को पुकारा जाता था। ग्रीक माइथोलोजी पर आश्रित एक महाकाव्य में होमर ने देवताओं के विरोधी समूहों का अपनी पूजा करने वाले भक्तों की युद्ध में सहायता करने का काव्यमय चित्र दिया है।

पिछले दोनों महायुद्धों में इंगलैंड के चर्चों में ईसामसीह से जर्मनी की पराजय की प्रार्थना होती थी और जर्मनी के गिरजाघरों में ईसामसीह से ही इंगलैंड की पराजय के लिए प्रार्थना होती थी। मानव-जाति ने अपने द्वेष की अग्नि में भगवान, देवता और धर्म को भी झोंक दिया है। जहाँ तक लेखक का ज्ञान है केवल एक उदाहरण पिछले १०० वर्षों में इसके विपरीत मिलता है, जब चीन के साथ अफीमयुद्ध में इंगलैंड की पराजय के लिए प्रार्थना इंगलैंड के ही गिरजाघरों में हुई थी।

धार्मिक लड़ाइयाँ शताब्दियों से चल रही हैं मुसलमानों के नेता अपने अनुयायियों को समझा रहे हैं कि हिन्दू धर्म को मिटा देना उनका धार्मिक कर्तव्य है। हिन्दुओं ने भी 'जय हनुमानजी' का नाम लेकर मुसलमानों को कत्ल किया और उनके घरों में आग लगा दी। यहूदी, ईसाई, मुसलमान, हिन्दू, सबके व्यवहारों को देखकर अंतर चीत्कार कर उठता है और उसाइने के स्वर में भगवान से पूछता है, हे प्रभु ! तुम्हारे नाम पर जो धर्म संसार में अभी चल रहे हैं उन्हें उठा लो।

इन्टरनेशनलिज्म (अन्तर्राष्ट्रीय भावना) को मौलिक आधार मानकर जन्म लेने वाला साम्यवाद विश्व महायुद्ध में राष्ट्रीयता का समर्थक और प्रचारक बन गया। रूसी राष्ट्रीयता, चीनी राष्ट्रीयता, पोलिश राष्ट्रीयता, रोमानियन राष्ट्रीयता, आदि से विश्व साम्यवादी समाज भरा पड़ा है।

इन उन्मत्त, जड़ीभूत विचारधाराओं के विरुद्ध, दिन के समय पेरिस की सड़कों पर लालटेन लेकर भगवान को खोजने वाले नीत्से की तरह ही, कोई यह कहने का साहस कर सकता है कि राष्ट्रीयता और धार्मिक सम्प्रदायवाद जहर हैं ?

सात समुद्र के ऊपर यूनियन जैक झंडा फहराने का सपना देखनेवाला अंग्रेज, विश्व में हथियारों के बल पर साम्यवाद को स्थापित करने का प्रयत्न करने वाले साम्यवादी, भारत की महान संस्कृति का नाम लेकर अहंकार में डूबे हिन्दू, किस तरह कह सकेंगे कि राष्ट्रीयता जहर है। आज जिसके पास ऐसा कहने का साहस है वही सच्चा क्रान्तिकारी है। इसी तरह आज मुसलमानों के नेता क्या साहस के साथ कह सकते हैं कि मजहब और कौम परस्ती केवल आउट ऑफ डेट ही नहीं बल्कि जहरीले हो गये हैं ? दो हजार वर्षों से कूट-कूट कर मानव-हृदय में जो भावनाएँ बैठायी गयी हैं उन्हें उखाड़ कर फेंक देना कोई सहज काम नहीं। कोई कहे तो उसकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह होगी। सोवियत रूस में जैसे विरोधियों को पागलखाने में रख देते हैं वैसे ही अन्य देशों में ऐसे लोगों को पागलखाने में रख देंगे।

लेकिन विश्व यदि उन्मादग्रस्त होकर अपना सर्वनाश करने को उतारू हो जाय तो क्या समझदार व्यक्तियों को साहस के साथ नहीं कहना चाहिये कि यह

सर्वनाश का पथ है ? धीरे-धीरे बदलने का समय अब नहीं रहा। झटके से बदलना होगा। क्योंकि, मानव-जाति की रक्षा के लिए विश्व-धर्म व विश्व राज्य की स्थापना एक तात्कालिक आवश्यकता बन गयी है। आज जो इसकी अनिवार्य आवश्यकता को नहीं समझ पा रहे हैं वे भी दो-चार वर्षों में ही समझ जायेंगे। विश्व का कोना-कोना हथियारों से भर चुका है। हिंसा और द्वेष से वातावरण उत्तप्त है। भोग-विलास की कामना उन्माद के शिखर को छू रही है। फिर भी, मनुष्य जीवन परिवर्तन की आवश्यकता न समझ पाये तो यह उसका दुर्भाग्य ही है। लगता है कीटों की तरह मानव जाति अपनी ही जलायी हुई अग्निशिखा पर जल मरने के लिये उन्मत्त हो उठी है।

ऐसी अवस्था में धर्म और भगवान को मानव-हृदय में बैठाना भी असम्भव हो रहा है। क्योंकि ईश्वर, ब्रह्म या भगवान तो प्रेम-स्वरूप है। परन्तु, आज धर्म और मजहब ही द्वेष और हिंसा सिखा रहे हैं।

मजहब नहीं सिखाता
आपस में बैर रखना।

ऐसी बात कह कर धर्म की झूठी प्रशंसा हम क्या करना चाहते हैं ! आज तो साहस के साथ हम कहना चाहिये कि मजहब आपस में बैर रखना सिखाता है। पैगम्बरों, महापुरुषों और अवतारों का नाम लेने से कोई लाभ नहीं। ईसा मसीह का महान प्रेम उनके जीवन में ही सूली पर चढ़ा दिया गया। बुद्धदेव की अहिंसा को भारत के अंधे उच्च वर्णों ने देश से उखाड़ कर फेंक दिया। मजहब के आदि पुरुषों ने जो कुछ भी कहा हो, परन्तु आज तो ऊँच-नीच का भेद रखने वाला हिन्दू समाज, मजहबी आग को भड़काने वाला इस्लाम और यहूदियों का द्वेष हमारे सामने है। आज हिन्दू, मुसलमान और यहूदी आदि के लबादे के नीचे जो मानवता सड़ रही है उसे जागृत करना हो तो इन लबादों को फेंक देना होगा और सारे विश्व को सिखाना होगा कि वह राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, परमहंस रामकृष्णदेव आदि सब महापुरुषों का आदर करे।

क्या विचारधारों ने इस बात को कभी सोचा है कि मजहब या धार्मिक सम्प्रदायों के जाल में कितनी बड़ी सम्पदा से मानव जाति को वंचित रखा है ? ईसा मसीह का महान प्रेम तथाकथित हिन्दुओं और मुसलमानों के दिल को क्यों नहीं प्रभावित करता ? बुद्धदेव और उनकी अहिंसा सारे विश्व के लिए श्रद्धा की वस्तु होनी चाहिए। राम का मर्यादित जीवन सारे विश्व का आदर्श क्यों न बने ? कृष्ण के महान प्रेम और साहस को विश्व की सम्पदा होनी चाहिए। इन महान व्यक्तियों को सम्प्रदायिकता के दायरे में बाँट कर हमने इन्हें नीचा गिरा दिया है। विचारकों से मेरी प्रार्थना है कि इस प्रश्न पर विचार करें कि उस मानव हृदय का स्वरुप कैसा होगा जिसमें राम, कृष्ण, मुहम्मद, ईसा—सब के लिए श्रद्धा और प्रेम भरे पड़े हों ? इन महान सम्पदाओं से मजहब या साम्प्रदायिकता विश्व को वंचित रख रही हैं। ईरान में इस्लाम का उदय संभवतः दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ था। इससे पहले के ईरान के महान इतिहास को काले अक्षरों से पोत कर ईरान अपने देश को उसकी महान संस्कृति से क्या वंचित नहीं कर रहे हैं ? इस्लाम के उदय के पहले भारत के महापुरुष, उपनिषद के प्रणेता महर्षिगण, युधिष्ठिर, अर्जुन, कृष्ण, बुद्धदेव आदि को विश्व के महापुरुष, मान कर स्वीकार किया है। भारत के मुसलमानों को भारत की प्राचीन संस्कृति की सम्पदा से वंचित रख कर धार्मिक नेताओं ने मुसलमानों का कौन सा भला किया ? फ्रांसिस ऑफ असीसी का महान प्रेम विश्व की सम्पदा क्यों न बने ? जलालुद्दीन रूमी के भगवत प्रेम की महानता का आनन्द प्रत्येक हिन्दुस्तानी ले सकता है और लेना भी चाहिए। ओल्ड टेस्टामेन्ट के सामगान सबके लिए आह्लादकारी हैं। परमहंस रामकृष्ण के वचनामृत विश्व-मानव के आकुल हृदय की प्यास हरने में सहज समर्थ हैं।

आज धार्मिक सम्प्रदायों की संकीर्णता और राष्ट्रीयता के पिंजड़ों में बन्द होकर मानवता अपनी विरासत में मिली महान सम्पदाओं से वंचित हो रही है।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि ईश्वर, धर्म या ब्रह्म

प्रेम स्वरुप हैं। सृष्टिकर्त्ता को सृष्टि से अलग नहीं किया जा सकता। कविता को कवि से पूर्णतः विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। इसलिये सृष्टि में दो सृष्टि कर्त्ता या दो भगवान नहीं हो सकते और साकार या निराकर जैसा भी भगवान माना जाय उसका स्वरुप विश्व-प्रेम छोड़ कर और कुछ नहीं हो सकता। भगवान की स्वीकृति का अर्थ है विश्व-प्रेम. अर्थात्—

'जय जगत्

और, सब लबादों को फेंक कर, मात्र मनुष्य बन कर एक इंसान को कहना चाहिये कि "मैं—विश्व—नागरिक हूँ।"

विज्ञान ने विश्व की एकता को दृढ़ भूमि पर स्थापित कर दिया है और विज्ञान पर आश्रित यातायात के विकास ने विश्व को एकता के सूत्र में बाँध दिया है। आज इसके विपरीत हम विश्व को टुकड़ों में तोड़कर क्यों रखना चाहते हैं ? जैसे रसायन शास्त्र (केमिस्ट्री) का कोई जापानी या हिन्दू संस्करण नहीं हो सकता, भौतिकी भौतिकी है—वह न हिन्दू है न मुसलमान। इसी तरह आध्यात्मिक तत्व भी एक ही है। आध्यात्मिक तत्व का कोई हिन्दू या मुस्लिम संस्करण नहीं हो सकता। धार्मिक साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता सड़े हुए अन्ध-विश्वास बनकर रह गयी हैं। इनकी सफाई पर ही विश्व धर्म का उदय हो सकता है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' को मानवीय चेतना का एक अंग होना चाहिए और "हृदयानि समान आकूति"—इस वैदिक मन्त्र को विश्व-संस्कृति का आधार होना चाहिये।

कुछ महीने पहले पूज्य विनोवा जी ने भारत सरकार के संभवतः किसी मंत्री को सलाह दी थी कि शिक्षालयों में विश्व.नागरिकता का भाव अभी से जगाना चाहिए। परन्तु इस तरह की बातों को सुन कर भी कुछ लोग अपने ही पुराने विचारों का मंथन करते रहते हैं। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि लोग इस तरह के विचारों पर गंभीरता से विचार करें और अपने ही पुराने विचारों में डूबे न रहें।

आज जीवन और मृत्युके बीच खड़ी मानवता पूर्णतः नवीन पथ को खोज रही है। विश्व-नागरिक के भावसे हम सबको कहना चाहिए—'जय जगन्नाथ', 'जय जगत्।

जो लोग संकीर्ण विचार के हैं, वे ही दूसरों के धर्म की निन्दा करते हैं और अपने धर्म को श्रेष्ठ बताकर सम्प्रदाय गढ़ते हैं। किन्तु, जो ईश्वरानुरागी हैं, वे केवल साधन-भजन किया करते हैं, उनके भीतर किसी तरह की दलबन्दी नहीं रहती। बँधे ताल-तलैयों में ही काई आदि जमती है, बहती नदी में नहीं।

—परमहंस श्रीरामकृष्ण

साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी बीभत्स वंशधर धर्मांधता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी हैं। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये बीभत्स-दानवी न होतीं, तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है, और मैं आंतरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मांधता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होनेवाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का, मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।

—स्वामी विवेकानन्द

(विश्व-धर्म-महासभा, शिकागो में ११ सितम्बर, १८९३ ई० को दिये गये प्रथम व्याख्यान का अंश)

श्रीरामकृष्ण संदेश

डॉ० रामाशीष प्रसाद

जग में रहता किसका घमण्ड ? जुगनू तारों से हुए मात;
चन्द्रमा चमकता तबतक ही जबतक नउदित दिनकर प्रभात

अति चतुर ठगे जाते बहुधा कौए ज्यों विष्ठा खाते हैं;
लोभी निज प्राप्त गँवाते हैं, भोले अप्राप्त को पाते हैं ।

पानी में बिलकुल मिल जाता, तो दूध श्रेष्ठता है खोता;
जमकर कुछ काल मथित होकर, मक्खन ऊपर तिरता होता।

गुरुता में मन तोलता और लघुता में मन तुल जाता है;
जैसी भावना, सिद्धि वैसी जब कीट भृंग बन जाता है ।

वासना-चिन्ह लेकर न मनुज परमात्मतत्त्व को पा सकता;
ज्यों गाँठसहित धागा न कभी सूचिका-छिद्रमें जा सकता ।

साधक जग का हितसाधक है पर साधकहित जग बाधक है;
जल पर नौका संवाहक है, नौका में जल संघातक है ।

जब जल में चंचलता रहती प्रतिबिम्ब न दिखलाई पड़ता;
जब मन में अस्थिरता रहती सच्चिदानन्द क्यों कर आता ।

ले विषय बुद्धि सेवा-पथ पर कभी न कामी भी बढ़ सकता;
आराध्य देवकी पूजा में दागी फल-फूल न चढ़ सकता ।

जानता मनुज जो ज्ञान-मंत्र माया में कभी नहीं फँसता,
जब तेल हाथ में लगा रहे कटहल का दाग नहीं लगता ।

है जीव प्याज-सा ही आवृत, हटता छिलका खुलता जीवन;
आवरण दूर होता, होता चैतन्य आत्मा का दर्शन ।

मानव ज्यों तकियेके गिलाफ आकार भिन्न हैं श्वेतश्याम;
आत्मा-रुई सबके भीतर सब में परिलक्षित सिया-राम ।

आत्मा जीव औ ब्रह्म बीच परदा अलगाव खटकता है;
माया-सीता जब-जब हटती लक्ष्मण को राम झलकता है।

सच्चिदानन्द के सूरज को माया का बादल ढँक लेता
ज्यों अहं भाव का पंकिल जल प्रतिबिम्ब नहीं लखने देता।

अज्ञान ज्ञान से परे अकथ्य सच्चिदानन्द साधक पाते;
काँटा से काँटा निकाल कर दोनों से पिण्ड छुड़ा लेते ।

सच्चिदानन्द के पाने पर प्राणी आसक्त नहीं होता;
पारस छूकर सोना बनकर लोहा न कलंकित फिर होता ।

हो सकता है कि हिन्दू अपनी सभी योजनाओं को कार्यान्वित करने में असफल रहा हो, पर यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होना है तो वह किसी देश या काल से सीमाबद्ध नहीं होगा, वह उस असीम ईश्वर के सदृश ही असीम होगा, जिसका वह उपदेश देगा, जिसका सूर्य श्रीकृष्ण और ईसा के अनुयायियों पर, सन्तों पर और पापियों पर समान रूप से प्रकाश विकीर्ण करेगा, जो न तो ब्राह्मण होगा, न बौद्ध, न ईसाई और न इस्लाम, वरन् इन सबकी समष्टि होगा, किन्तु फिर भी जिसमें विकास के लिए अनंत अवकाश होगा, जो इतना उदार होगा कि पशुओं के स्तर से किंचित् उन्नत निम्नतम घृणित जंगली मनुष्य से लेकर अपने हृदय और मस्तिष्क के गुणों के कारण मानवता से इतना ऊपर उठ गये उच्चतम मनुष्य तक को, जिसके प्रति सारा समाज श्रद्धानत हो जाता है और लोग जिसके मनुष्य होने में संदेह करते हैं, अपनी बाहुओं से आलिंगन कर सकें और उनमें सबको स्थान दे सकें ।

—स्वामी विवेकानन्द

श्रीरामकृष्ण और गृहस्थाचार

डॉ० केदारनाथ लाभ

पीयूष-प्राण परमहंस श्री रामकृष्ण देव भारतीय धर्म-साधना एवं संस्कृति के भास्वर दीपाधार थे। वे १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आध्यात्मिक-आकाश के प्रखरतम आलोक-पिंड थे। उन्होंने अपने निस्संग जीवनाचार, गहन चिंतन, सूक्ष्म आत्मानुभूति तथा दिव्य अनुभव-संवृत महत्तम उपदेशों से सम्पूर्ण भारत एवं भारतेतर राष्ट्रों को अनुप्राणित तथा आप्यायित किया था। स्वामी विवेकानन्द उनकी साधना, सिद्धि एवं शक्ति के एक ललित-कलित कमनीय कुसुम थे जिनके संदेश-सौरभ ने यूरोप और अमरीका के प्रबुद्ध मानस को विस्मय-विमुग्ध कर दिया था। किन्तु जहाँ विवेकानन्द की ओज-दृप्त वाणी से ज्ञान और कर्म की स्फुरणाएँ किसी ज्योति-प्रस्रवणी सी प्रवाहित होती रहती थीं, वहाँ श्रीरामकृष्ण के वचनामृत-निर्झर से विरक्ति और भक्ति की तल-स्पर्शी लहरियां उठ-गिर कर जन-मानस को तरल-तृप्त कर देती थीं। वे उस कैलाश की भाँति थे जो अपनी उच्चता और विराटता के बावजूद जन-कल्याण के लिए गलकर गंगा बन जाने में संकोच-बोध नहीं करता है। कृष्ण के निश्छल-अशेष प्रेम, बुद्ध की असीम करुणा और ईसा मसीह की औदार्यपूर्ण सदाशयता की त्रिवेणी से निर्मित श्रीरामकृष्ण के व्यक्तित्व में तीर्थराज की गरिमा आ गयी थी। रोमां रोलां ने उन्हें भारत के तीस कोटि हिन्दुओं की विगत दो सहस्राब्दियों की आध्यात्मिक आकांक्षा की पूर्ति कह कर उनकी महिमा का संयमित उल्लेख किया है।

श्रीरामकृष्ण ने कामिनी और कंचन की अत्यन्त विगर्हणाएँ की हैं किन्तु वे वस्तुतः नारी-निन्दक नहीं थे। सच तो यह है कि सम्पूर्ण नारी-जाति को ही उन्होंने मातृभाव से देखा, माना था। कामासक्ति को वे 'कामिनी' का शब्द देते थे और अर्थासक्ति को 'कंचन' का। किन्तु वे यह भी जानते थे कि कोटि-कोटि गृहस्थों के लिए गृह-त्याग कर कामिनी-कंचन से विमुख होना संभव नहीं है। अतः गृहस्थों के लिए गार्हस्थ्य धर्म का निरासक्त भाव से पालन कर जीवन-मुक्त होने का उपदेश उन्होंने दिया है। सुतरां उनका उपदेश वैरागियों के लिए निवृत्ति मार्गी है तो गृहस्थों के लिए प्रवृत्ति मार्गी हो। हां, संयम और सीमा का बोध वे गृहस्थों को अवश्य करा देना चाहते थे।

एक बार श्री रामकृष्ण सांसारिकता में व्यस्त बद्ध जीवों की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए अपने भक्तों से कह रहे थे—"बद्ध जीव कामिनी और कंचन की शृंखला के द्वारा संसार से आबद्ध हो जाते हैं। उनके हाथ-पांव बँध जाते हैं। इस चिन्तन से कि 'कामिनी और कंचन' उन्हें सुखी बनायेंगे और उन्हें संरक्षण देंगे वे यह नहीं जान पाते कि ये उन्हें संहार की ओर ले जायेंगे। सांसारिकता से बँधा प्राणी मरणासन्न हो जाता है, उसकी पत्नी कहती है—'अब तो तुम मरने वाले हो; किन्तु तुमने मेरे लिए क्या किया है?' फिर उसका मोह सांसारिक वस्तुओं के प्रति ऐसा होता है कि जब वह दीपक को तेज जलता देखता है तो कहता है 'रोशनी धीमी कर दो। बहुत अधिक तेल खर्च हो रहा है। और वह स्वयं मरण-शय्या पर पड़ा है। बद्ध जीव ईश्वर के विषय में कभी नहीं सोचते। उन्हें जब अवकाश मिलता है वे गप्पों और मूर्खतापूर्ण बातों तथा निष्फल कर्मों में लग जाते हैं। उनमें से किसी एक से यदि इसका कारण पूछो, वह कहेगा— ओह, मैं निठल्ला बैठ नहीं सकता, इसलिए मैं झाड़ियों की टट्टी बना रहा हूँ। जब समय धीरे-धीरे बीतता जाता है, वे ताश खेलना शुरू कर देते हैं।"

श्री रामकृष्ण के इस प्रवचन से श्रोताओं में मौन छा गया तब एक श्रोता ने पूछा—'महाराज! तब क्या ऐसे संसारी व्यक्ति के लिए कोई मार्ग नहीं है? श्रीरामकृष्ण ने तुरत उत्तर दिया—'अवश्य। समय-समय पर उसे एकान्त में ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। कि

उसे भेदाभ्यास कर प्रार्थना करनी चाहिए—'प्रभु ! मुझे आस्था और भक्ति दो । आस्था होने पर व्यक्ति सब कुछ पा जाता है । विश्वास से बड़ा कुछ नहीं है ।'

श्रीरामकृष्ण ने गृहस्थों के लिए, मेरे विचार में, मुख्य रूप से आचार-त्रय का निर्देश किया है । वे हैं—(१) यदा-कदा एकान्तवास । (२) ईश्वर का नाम-जप तथा गुण-गान । (३) सद्-असद् विवेक-द्वारा सत् को ग्रहण करना ।

एक बार श्रीरामकृष्ण से उनके एक शिष्य ने पूछा—'संसार में हम लोगों को कैसे रहना चाहिए ? श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया—'अपने सभी कर्म करो किन्तु अपना चित्त ईश्वर पर लगाये रखो । पत्नी, बच्चे पिता और माता सब के साथ रहो तथा उनकी सेवा करो । इनके साथ ऐसा आचरण करो जैसे कि वे तुम्हारे अत्यंत प्रिय हों किन्तु अपने अन्तर्मन से समझते रहो कि वे तुम्हारे नहीं हैं ।'

श्रीरामकृष्ण ने अपने को और स्पष्ट करते हुए कहा—'एक धाय किसी धनी व्यक्ति के घर के सभी धंधे करती है पर अपना ध्यान अपने गाँव में बने अपने घर पर केन्द्रित रखती है । वह अपने मालिक के बच्चों का पालन इस भांति करती है मानों वे उसके अपने बच्चे हों । वह उन्हें 'मेरा राम', 'मेरा हरि' आदि कह कर सम्बोधित भी करती है । किन्तु अपने मन से वह भली भाँति जानती है कि वे बच्चे उसके नहीं हैं ।

"कच्छप जल में विचरण करता है । किन्तु क्या तुम अनुमान लगा सकते हो कि उसका ध्यान कहां है ? उसका ध्यान नदी के तीर पर है जहां उसके अण्डे पड़े हैं । इसी भांति संसार में अपने सभी कार्यों को करो किन्तु अपना मन ईश्वर पर केन्द्रित रखो ।"

गृहस्थों को सांसारिक कर्म करने का निर्देश करते हुए भी परमहंस ने एक शर्त लगा दी है । वह है आसक्ति-त्याग की । आसक्ति के दुर्वह परिणाम की ओर श्रीकृष्ण ने गीता में संकेत भी किया है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

अर्थात् 'विषय-चिन्तन से विषयासक्ति होती है । आसक्ति से कामना का उद्रेक होता है । कामना क्रोध की जननी है । क्रोध मोह (मूढत्व) उद्भावक है । मोह से स्मृति भ्रमित होती है । भ्रमित स्मृति बुद्धि-विनाशिका होती है तथा बुद्धि-विनाश से व्यक्ति का विनाश हो जाता है । इसी से कृष्ण ने अर्जुन को निस्संग भाव से कर्म करने की प्रेरणा दी—

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।

अर्थात् 'अर्जुन ! तू योगस्थ होकर निस्संग भाव से अपने कर्मों को कर ।'

'श्रीरामकृष्ण के अनुसार भी व्यक्ति यदि ईश्वरानुराग उत्पन्न किये बिना सांसारिकता में प्रवेश करता है तब वह दिनानुदिन उसके पंक में डूबता चला जाता है, इसके खतरे कष्ट और विषाद उसे आक्रांत कर लेते हैं तथा व्यक्ति जितना ही जागतिक पदार्थों के विषय में सोचता है उतना ही उसमें ग्रस्त होता जाता है । इसी से उनका कथन है—'पहले अपने हाथों में तेल का लेप कर लो तब कटहल का फल चीरो । अन्यथा हाथों में उसका दूधिया लस्सा लग जाएगा । पहले ईश्वरानुराग का तेल प्राप्त करो तब अपने हाथ, जागतिक कर्मों में लगाओ ।'

ईश्वरानुराग प्राप्त करने के लिए श्रीरामकृष्ण का विचार है कि व्यक्ति को कुछ काल के लिए निश्चयपूर्वक एकान्त में रहना चाहिए । दूध से मक्खन प्राप्त करने के लिए दूध को एकान्त स्थान में रख देना पड़ता है ताकि वह जम कर दही बन जाय । यदि दूध को अधिक हिलाया जाय तो वह दही नहीं बनेगा । फिर सभी कार्यों को छोड़कर शांत स्थल पर बैठ कर दही मथना पड़ता है । तब मक्खन निकलता है ।

एकान्त में ईश्वर का ध्यान करने से मन ज्ञान, शान्ति और भक्ति पाता है । वही मन सांसारिकता में लिप्त हो जाने पर अधोगामी हो जाता है । संसार में मुख्य रूप से एक ही विचार काम करता है—कामिनी

और कंचन का विचार। संसार जल है और मन दूध। दूध को अगर जल में डाल दिया जाय तो दोनों मिश्रित होकर एकमेव हो जाएँगे। ऐसे मिश्रण से शुद्ध दूध नहीं निकाला जा सकता है। किन्तु दूध का दही जमा कर उसे मथ दें तो मक्खन बन जाएगा और मक्खन को जल में छोड़ भी दिया जाए तो वह जल पर तैरता रहेगा। अतः श्रीरामकृष्ण के विचारानुसार आध्यात्मिक अनुशासन की साधना एकान्त में करके पहले ज्ञान और प्रेम का नवनीत प्राप्त कर लेना चाहिए। पुनः यदि उस नवनीत को सांसारिकता के जल में डाल भी दिया जाय तो दोनों मिश्रित नहीं हो सकेंगे। नवनीत तैरता रहेगा। जल में रह कर भी जल से असम्पृक्त रहेगा। यही अनासक्त-कर्म का मूल रहस्य है। श्रीकृष्ण ने गीता में इसे ही 'जल में कमलवत रहना' 'पद्म पत्रमिवाम्भसा' कहा है। उपनिषद् में इसे ही त्यागमय भोग (तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा) कहा गया है।

अन्त में श्रीरामकृष्ण ने गृहस्थों के लिए विभेदकत्व का अभ्यास करने का निर्देश किया है। उनके अनुसार व्यक्ति को यानी गृही को चाहिए कि वह सत्-असत में भेद कर सत् को ग्रहण और असत का त्याग करना सीख ले। यथा कामिनी और कंचन नश्वर हैं। ईश्वर ही चिरन्तन सत्य है। अर्थ से मनुष्य क्या पाता है? भोजन, वसन और भवन। बस। इनसे ईश्वरानुभूति नहीं हो सकती। अतः कंचन जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। यही भेदात्मक दृष्टि की विश्लेषणात्मक प्रक्रिया है। रामकृष्ण के शब्दों में ही सुनिये—मात्र कामिनी और कंचन ही योग के बाधक तत्त्व हैं। जो कुछ देखो सदैव उनका विश्लेषण करो। एक कामिनी के शरीर में क्या है? मात्र रक्त मांस, चर्बी, विष्ठा आदि जैसी वस्तुएं। ऐसे शरीर के प्रति कोई क्यों अनुरक्त हो?

गृहस्थ उपर्युक्त आचारों के द्वारा ईश्वरानुभूति प्राप्त कर सकता है। किन्तु इन में ईश्वरानुराग ही मूल तत्व है। ईश्वर-प्रेम में विभोर होकर मनुष्य ने ज्यों ही एक बार आंसू बहाये कि ईश्वर उसके समक्ष प्रस्तुत हो गये। मनुष्य का मन सुई की भांति है जो विकृतियों के पंक से आवृत है और ईश्वर चुम्बक के सदृश है। जब तक सुई पंकावरण से विमुक्त नहीं हो जाती, वह चुम्बक से संस्पर्शित नहीं हो सकती। आंसू काम, क्रोध, लोभ, मोहादि के पंक को धो देते हैं, बहा देते हैं। ज्यों ही पंक धुल जाता है चुम्बक सुई को अपनी ओर खींच लेता है अर्थात् मनुष्य को ईश्वर का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। शुद्ध हृदय ही ईश्वर-दर्शन कर सकता है।

इस भांति श्रीरामकृष्ण ने गृहस्थों के लिए भी कुछ सहज आचारों का निर्देश कर जागतिक जीवन के बीच भी ईश्वरानुभूति तथा जीवन-मुक्ति का सरल मार्ग प्रस्तुत कर दिया। इसी से महात्मा गांधी ने श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में लिखा है—'उनका जीवन हमें ईश्वर का प्रत्यक्ष (आमने-सामने) दर्शन करने की योग्यता प्रदान करता है।..........रामकृष्ण ईश्वरत्व की जीवंत प्रतिमा थे'।

★ ★ ★

किसी ने श्रीरामकृष्णदेव ने पूछा, "क्या संसार में रहकर ईश्वर की उपासना सम्भव है?" श्रीरामकृष्णदेव थोड़ा मुसकराकर बोले, "गांव में कभी चिउड़ा कूटनेवाली स्त्रियों को देखा है? एक ही स्त्री एक हाथ से ओखली के भीतर चिउड़ा चलाती रहती है, दूसरे हाथ से लड़के को गोद में लेकर दूध पिलाती जाती है, साथ साथ ही खरीददार से लेन-देन की बातचीत भी करती जाती हैं, कहती है, 'देखो जी, तुम्हारे ऊपर उस दिन का इतना पैसा बाकी है, आज का इतना पैसा हुआ" आदि-आदि। इस प्रकार वह सब कुछ करती रहती है, परन्तु उसका मन सदैव ढेंकी के मूसल की ओर ही रहता है—कहीं हाथ पर गिरा तो हाथ भरता हो जाएगा! बस, इसी प्रकार संसार में रहकर सब काम करो, परन्तु मन रखो श्रीभगवान के चरणों में। उनको भूल जाने से महा अनर्थ होगा।"

—परमहंस श्रीरामकृष्ण

स्वामी अभेदानन्द का पत्र

४०, बीडन स्ट्रीट कलकत्ता
१० मई, १९२६

प्रिय गणेश,

तुम्हारा पत्र यथा समय प्राप्त हुआ। भगिनी भवानी के साथ तुम सकुशल दार्जिलिंग पहुँच गये, यह जानकर प्रसन्नता हुई। चिन्ताहरण एवं तुम भवानी बहन की सेवा सुश्रूषा के लिए हर सम्भव प्रयास करते रहे हो, इसके लिए तुम दोनों को अतिशय धन्यवाद। उन्हें मेरी ओर से कहना कि अपने दुर्बल स्वास्थ्य का ध्यान रख वह शीत से बचें।

सम्भवतः मैं २५ मई को कालिदास के साथ दार्जिलिंग के लिए प्रस्थान करूँगा। तुम्हारे पिता सकुशल हैं और आश्रम के विकाश के लिए कठिन परिश्रम करते रहें हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई। उन्हें मेरा नमस्कार कहना।

प्रह्लाद बाबू क्या प्रतिदिन आश्रम आते हैं? उन्हें बताना कि मुझे उनका पत्र मिल गया है और शीघ्र ही मैं उसका उत्तर दूँगा।

जप एवं ध्यान नियम से करते रहो; शेष सब कुछ यथा समय ठीक हो जायेगा। ठाकुर ने हमें मन्त्र देते समय कहा था, 'मैंने तो तुम्हें मन्त्र दे दिया, अब तुम पर है कि इसे ग्रहण करो' यह अक्षरशः सत्य है। बहुत से लोग मन्त्र लेकर सोचते हैं कि उनका उद्देश्य पूरा हो गया और आगे किसी आध्यात्मिक साधना की आवश्यकता नहीं। यह सोचना निरी मूर्खता है। मन्त्रदीक्षा के उपरांत आध्यात्मिक साधना की आवश्यकता होती है। तभी ईश्वर की अनुभूति सम्भव है। यह तो सर्वथा सत्य है कि साधना के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। मन्त्र लेकर लोग सोचते हैं कि अब उनके बदले सब कुछ गुरु महाराज करेंगे और उन्हें स्वयं किसी साधना की अपेक्षा नहीं है। यह सही नहीं है। गुरु शिष्य की शक्ति को जाग्रत करता है, बस। शिष्य को स्वयं उस शक्ति का विकास करना होता है। फिर यह भी सर्वथा स्मरण रखो कि साधना के मार्ग में गुरु शिष्य की सहायता तभी करता है जब वह पाता है कि शिष्य उसके निर्देशानुसार आध्यात्मिक साधना करता रहा है। जो शिष्य गुरु के निर्देश का पालन नहीं करता उसे कुछ भी हाथ नहीं आता। वह दुष्ट अपने गुरु को बस ठगना चाहता है।

गुरु बीज बोता है, शिष्य को उसे भक्तिजल से सींच तथा आध्यात्मिक साधना रूपी उर्वरक से पुष्ट कर वृक्ष बनाना होता है।

आध्यात्मिक साधना करने की चेष्टा न कर लोग गिरीश बाबू (★) का उदाहरण दिया करते हैं जिन्होंने ठाकुर को 'वकालतनामा' दे रखा था। ऐसे लोग गिरीश बाबू की अगाध भक्ति से अनभिज्ञ हैं। हमने ठाकुर को कहते सुना है कि गिरीश का विश्वास अप्रतिम है। कितने लोगों का विश्वास इस कोटि का है?

ठाकुर को वकालतनामा देने के बाद भी गिरीश बाबू को जप-तप करना पड़ा था। काशीपुर उद्यान(+)

(★) स्व० गिरीश चन्द्र घोष बंगला रंगमंच के प्रणेता अपने समय के प्रसिद्ध नाटककार एवं श्री ठाकुर के अनन्य भक्त थे। प्रारम्भ में इनका जीवन विलासी था पर अपनी साधना एवं श्रीठाकुर में अटल विश्वास के बल पर गिरीश बाबू श्रीठाकुर के भक्तों में पूज्य हुए। आज भी बंगला नाट्यशाला के प्रसाधन कक्ष (ग्रीन रूम) में श्री ठाकुर की एक परम्परागत छवि अवश्य रहती है जिसे नमस्कार कर ही कलाकार अभिनय आरम्भ करते हैं। (—अनु०)

(+) लीला संवरण के पूर्व श्रीठाकुर चिकित्सा की सुविधा हेतु दक्षिणेश्वर से कलकत्ते के निकट काशीपुर उद्यान गृह में ले जाये गये थे। उनकी महासमाधि के उपरान्त वही आवास शिष्यों का पहला मठ हुआ। (—अनु०)

में तुमने देखा था कि गिरीश बाबू जब पूजा के लिये ध्यानस्थ रहते थे तब मच्छड़ उनके शरीर पर कम्बल की भांति छा जाते थे।

सभी साधक एवं महान् पुरुषों के जीवन में देखा जाता है कि उन्हें कठोर तपस्या करनी पड़ी थी। स्वयं ठाकुर बारह वर्षों तक सोये नहीं थे। फिर दूसरों का क्या कहना!

जप एवं ध्यान, नियम से करते रहो। ठाकुर की कृपा तुम पर होगी। मैं प्रति सप्ताह दो दिन कक्षाएँ लेता हूँ जिसमें उपस्थिति भी अच्छी होती है।

इन दिनों मेरा स्वास्थ्य ठीक है हालांकि कुछ समय पूर्व मैं दांत के दर्द से बहुत परेशान रहा और अन्ततः उस दांत को निकाल देना पड़ा। मेरा प्रेम एवं आशीष ग्रहण करो।

तुम्हारा—अभेदानन्द

श्रीरामकृष्ण मिशन आश्रम पटना : एक संक्षिप्त प्रतिवेदन

सर्वधर्मसमानत्व के प्रणेता श्री रामकृष्ण परमहंस के महाप्रयाण के उपरांत अगस्त १८८६ में एक मठ की स्थापना उनके प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्व में हुई। प्रारम्भ में यह मठ उत्तर कलकत्ता में बड़ानगर में रहा। संघ के दो मुख्य उद्देश्य थे। एक तो श्री राम. कृष्ण द्वारा उपदिष्ट वेदान्त दर्शन के प्रचारकों का एक समर्पित समूह तैयार करना और दूसरा श्रीपरमहंस देव के गृहीत भक्तों के सहयोग से दातव्य एवं जनहित के कार्य करना। स्वामी विवेकानन्द के प्रवास से लौटने के तुरन्त बाद मई १८९७ में रामकृष्ण मिशन एसोशिएसन नाम से एक संगठन की स्थापना उन्होंने की जो प्रारम्भ के दिनों में सेवा कार्य करता रहा। पूर्व स्थापित मठ, जिसका आवास इस बीच बदला जा चुका था, अब १८९९ में अपने वर्तमान स्थल बेलुड़ में स्थायी रूप से लाया गया जहाँ आत्मदर्शन एवं समाज सेवा के युगल लक्ष्यों की दिशा में संन्यासियों के प्रशिक्षण का कार्य और अधिक उत्साह से आरम्भ हुआ। शीघ्र ही मठ ने उपर्युक्त मिशन एसोशिएसन के कार्य संचालन का भार भी अपने ऊपर ले लिया।

यद्यपि रामकृष्ण मठ का निबंधन सन् १९०१ में एक ट्रस्ट के रूप में हो चुका था फिर भी मिशन एसोशि. एशन के कार्य के लिए उसे सक्षम बनाने के लिए तथा उसे एक औपचारिक सत्ता देने के लिये सन् १९०९ में रामकृष्ण मिशन नामक एक सोसायटी का निबन्धन सन् १८६० के इक्कीसवें अधिनियम के अन्तर्गत हुआ। इसके संचालन का दायित्व एक संचालक समिति को सौंपा गया। धीरे-धीरे मठ एवं मिशन दोनों के ही कार्यक्षेत्र का विस्तार होता गया जिसके फलस्वरूप देश विदेश में इनकी कितनी ही शाखाएँ स्थापित हुई।

रामकृष्ण मिशन और रामकृष्ण मठ, अपनी शाखाओं सहित भिन्न औपचारिक सत्ताएँ होते हुए भी एक दूसरों से बंधे हैं। यहाँ तक कि मिशन की संचालक समिति के सदस्य मठ के संरक्षक हैं, मिशन के प्रशास- निक कार्यों का दायित्व मुख्यत: मठ के साधुओं पर है और दोनों के ही मुख्यालय बेलुड़ मठ में ही हैं। जनहित एवं दातव्य कार्यों से मठ एवं मिशन दोनों का सम्बन्ध है फिर भी मठ मुख्यत: धर्म प्रचार और मिशन सेवा- कार्य में रुचि लेता है। यह भी स्पष्ट कर देना अप्रासं- गिक न होगा कि श्रीरामकृष्ण या स्वामी विवेकानन्द के जन्म से स्थापित या उनके जीवन-दर्शन से प्रेरित सभी संस्थाएँ आवश्यक रूप से रामकृष्ण मठ या रामकृष्ण मिशन से सम्बद्ध नहीं हुआ करतीं।

पटना के रामकृष्ण मिशन आश्रम की स्थापना जून १९२२ में गोविन्द मित्र पथ, बाँकीपुर के एक किराये के मकान में हुई। सन् १९२६ में रामकृष्ण मिशन की एक शाखा के रूप में यह सम्बद्ध हुआ। अपने वर्तमान स्थल पर यह आवास ९ दिसम्बर १९३० को आया। पटने के मिशन आश्रम के अन्तर्गत एक दातव्य चिकित्सालय है जिसमें प्रतिवर्ष डेढ़ लाख से अधिक रोगियों की नि:शुल्क एलोपैथिक और होमियोपैथिक चिकित्सा की जाती है। आश्रम का एक छात्रावास भी है जो कुछ दिनों के अन्तराल के बाद जनवरी में १९७६

पुनः निर्धन छात्रों के लिए खोला गया। छात्रों के लिए इसमें निःशुल्क भोजन, आवास तथा चिकित्सा की व्यवस्था है तथा कतिपय अत्यन्त निर्धन आवासी छात्रों को पुस्तकें एवं स्कूल फीस भी आश्रम की ओर से दी जाती है। छात्रावास में प्रतिवर्ष औसत १५ से २० छात्र रहते हैं।

आश्रम का पुस्तकालय एवं वाचनालय बुधवार को छोड़कर प्रतिदिन संध्याकाल में तीन घंटे के लिए खुले रहते हैं। पुस्तकालय में १२००० से अधिक संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी एवं बंगला की पुस्तकें हैं तथा १४०० से अधिक सदस्य हैं। वाचनालय में तीन भाषाओं में लगभग ६० पत्रिकाएँ तथा १० समाचार पत्र आते हैं। जिनसे प्रतिवर्ष दो लाख से अधिक पाठक लाभ उठाते हैं। नन्हें पाठकों के लिए पुस्तकालय में एक अलग खण्ड है जिसमें बच्चे अपनी रूचि की पाठ्य सामग्री पाते हैं।

समय-समय पर आश्रम के तत्त्वावधान में धार्मिक एवं वैचारिक विषयों पर भाषण दिए जाते हैं तथा प्रतिवर्ष वसंत में निबन्ध, भाषण तथा आवृत्ति प्रतियोगिताएँ हिन्दी, अँग्रेजी एवं बंगला में छात्रों के लिए आयोजित की जाती हैं जिनके विषय स्वामी विवेकानन्द के जीवन-दर्शन से संबंधित होते हैं। पुरस्कार में विजेताओं को मुख्यतः रामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य दिए जाते हैं तथा स्वामी वीतशोकानन्द स्मारक ट्राफी भी प्रथम होनेवाले छात्र एवं छात्राओं को दी जाती है।

सन् १९७७ से आश्रम ने प्रतिवर्ष एक वार्षिक स्मारिका निकालना आरम्भ किया है। स्मारिका में वर्ष भर की आश्रम की गतिविधियों पर प्रतिवेदन के अतिरिक्त किसी एक विषय पर विख्यात विचारकों एवं लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं। सरस्वती पूजा, दुर्गा पूजा, काली पूजा, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, शिवरात्रि तथा रामनवमी जैसे धार्मिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त आश्रम में भगवान बुद्ध, आचार्य शंकर, श्रीचैतन्य, ईसा मसीह श्रीरामकृष्ण, श्रीशारदा देवी तथा स्वामी विवेकानन्द की जन्मतिथियाँ विशेष पूजा-आरती, संगीत तथा भाषण के साथ मनायी जाती हैं।

बाढ़, अकाल अथवा महामारी इत्यादि में आश्रम की ओर से विशेष सहायता-कार्य किए जाते हैं। सन् १९७५ में पटने में जब बाढ़ का पानी आ गया था, आश्रम ने लगभग सात हजार प्रभावित व्यक्तियों को सहायतार्थ रसद पहुँचायी थी। इसके अतिरिक्त तीन हजार से अधिक वस्त्र बाढ़-पीड़ित लोगों में आश्रम की ओर से बाँटे गए तथा ६५० से अधिक व्यक्तियों के हैजा और टी०ए०बी०सी० के निरोधक टीके लगाये गये। मनेर में आश्रम के कार्यकर्ताओं ने २००० बाढ़ पीड़ित व्यक्तियों में तीन सप्ताह तक भोजन बाँटे तथा इनमें से ५०० को नये वस्त्र दिये। मनेर प्रखंड में बाद में मिशन के बेलुड़ मुख्यालय की ओर से २३१ परिवारों के लिये पक्के मकान बनवाये गए। रामपुर, दियारा, भवानीपुर तथा बहादुरपुर के बाढ़-पीड़ितों के लिए १७५ तिरपाल के अस्थायी खंभे आश्रम की ओर से बनवाये गये।

अपने बहुद्देशीय धार्मिक एवं समाज-सेवा मूलक कार्यों के कारण रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना, राजधानी ही नहीं, राज्य के सभी भागों में श्रद्धेय एवं पूज्य है।

*

विवेकदीप : प्रतिक्रियाएं

(१)

प्रिय बन्धु,

आपका १४१-८२ का पत्र मिला। "विवेक दीप" का प्रथम अंक भी। अभी तो प्रयास आपने प्रारम्भ ही किया है। धीरे-धीरे उसका स्वरूप और निखरेगा और पाठकों को संतोष प्रदान करेगा।

शुभ कामनाओं के साथ,

स्वामी आत्मानन्द

पो० विवेकानन्द आश्रम,

रायपुर, ४९२-००१ म० प्र०

(२)

"विवेक दीप" का अंक देखने को मिला। पढ़कर बहुत खुशी हुई। इस तरह के स्वस्थ आध्यात्मिक साहित्य की देश को बहुत जरूरत है। अपनी शुभ कामना स्वरूप बीस रुपये मनी आर्डर से भेज रहा हूँ।

शुभाकांक्षी

रामनन्दन

बंगाली टोला, पो० लहेरियासराय

जि० दरभंगा (बिहार)

(३)

'विवेक दीप" देखा। आपकी यात्रा देखी। प्रभु के संकेत देखे। बड़ा अच्छा लगा।

जिस परम सत्ता ने आपको यह माध्यम बनाया है, वही इसे सार्थक भी करेगा। हम सब आपसे जुड़े हैं। कोई पत्रिका कितने दिन चलती है, रूप-सज्जा कैसी है, पाठक कितने हैं, आमदनी कितनी है—यह एकदम महत्वपूर्ण नहीं है, और न लौकिक मूल्यांकन ही। उसकी लीला है। लीलाधर के संग आप हैं, बस।

—डॉ० शशिभूषण वर्मा

रीडर एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर मनोविज्ञान विभाग

एम० एस० कॉलेज, मोतिहारी।

(४)

आपकी सद्यः प्रकाशित पत्रिका "विवेक दीप" मिली। आज के कुण्ठित, उच्छृंखल, तनावपूर्ण एवं विवादास्पद परिवेश में इसका प्रकाशन वस्तुतः सराहनीय है।

बहुत लोग नहीं जानते कि विवेकानन्द कितने बड़े क्रान्तिकारी और प्रगतिशील थे। उन्होंने जन-जीवन की जड़ता को तोड़कर उसे अधिकार-जाग्रत करने का अथक प्रयास किया। मैं सोचती हूँ, वर्तमान जनवादी उभार को विवेकानन्द की स्वीकृत पृष्ठभूमि से जोड़कर आप संदर्भ को सार्थकता देंगे।

फिर एक बार आपके सम्पादन की प्रशंसा करते हुए आपसे ऐसे अनेक कार्यों की अपेक्षा करती हूँ।

शुभकामनाओं सहित—

आपकी

डॉ शान्ति सुमन,

हिन्दी विभाग, मं० द० दा० महिला कॉलेज,

मुजफ्फरपुर (बिहार)

श्रीकान्त लाभ, कंकड़ बाग, पटना—१६ द्वारा प्रकाशित, डॉ० केदारनाथ लाभ द्वारा सम्पादित एव

जनता प्रेस नयाटोला, पटना—४ में मुद्रित

विवेक वाणी

ईश्वरावतार श्रीरामकृष्ण

(१)

वेदरूपी अनादि-अनन्त सागर के मंथन से जिस अमृत की प्राप्ति हुई है, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि देवताओं ने अपना-अपना ओज टाला है और जो लीला-मानव अवतारों के जीवन-रसायन के मिश्रण से और भी अधिक सारवान हो गया है, उसी अमृत के पूर्णकुम्भ स्वरूप भगवान् श्रीरामकृष्ण जीवों के उद्धार के लिए लीला द्वारा धराधाम पर अवतीर्ण हुए हैं।

(२)

यद्यपि ईश्वर सर्वत्र है परन्तु हम उसे एक विराट् मनुष्य के रूप में ही देख सकते हैं। ईश्वर के लिए जितने विचार हैं—जैसे कि दयालु, पालक, सहायक, रक्षक——ये सब मानवीय भावात्मक विचार हैं और साथ ही ये सब विचार किसी मनुष्य में गुँथे रहेंगे, चाहे उसे गुरु मानिये, चाहे ईश्वरी दूत या अवतार।·········यदि कुछ लोग अपने गुरु की उपासना करें तो इसमें क्या हानि है, विशेषतः जब कि वह सब ऐतिहासिक ईश्वरी दूतों का सम्मिश्रण करने पर भी उनसे सौ बार अधिक पवित्र हो ? यदि ईसा मसीह, कृष्ण और बुद्ध की पूजा करने में कोई हानी नहीं है, तो इस मनुष्य(श्रीरामकृष्ण) को पूजने में क्या हानि हो सकती है, जिसके विचार तक या कर्म में अपवित्रता छू नहीं गयी है, जिसकी बुद्धि अन्तर्ज्ञान द्वारा सब ईश्वरी दूतों से—जो कि एक पक्षवादी हैं—कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी है ? दर्शन, विज्ञान या अन्य किसी भी विद्या की थोड़ी भी सहायता न लेकर इसी महापुरुष ने जगत् के इतिहास में सर्वप्रथम सत्य-सम्बन्धी इस तथ्य का प्रचार किया कि सभी धर्म सत्य हैं; एवं यही सत्य वर्तमान समय में सर्वत्र प्रतिष्ठा लाभ कर रहा है।